श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ३

श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला

तृतीय भाग (तीसरी आवृत्ति)

अनुवादक—

श्री मगनलालजी जैन

प्रकाशक—

श्री सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला

अंतर्गत—मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट
६२, धनजी स्ट्रीट बम्बई नं० ३

मिलनेका पता—

श्री० दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र)

★

जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला भाग १-२

मिलने का पता—दि० जैन स्वाध्याय मंदिर

सोनगढ (सौराष्ट्र)

तृतीय भाग मूल्य १२ नये पैसे

★

मुद्रक मूलचन्द जैन

श्री जैन आर्ट प्रिन्टर्स अजमेर (राज)

अर्पण

परम कृपालु पूज्य

आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के

कर कमल में

जिनके उत्कृष्ट अमृतमय उपदेशको प्राप्त कर इस पामरने अपने अज्ञान अन्धकारको दूर करनेका यथार्थ मार्ग प्राप्त किया है ऐसे महान महान उपकारी मत धर्म प्रवर्तक पूज्य श्री कानजी स्वामीके कर कमलों में अत्यन्त आदर एव भक्तिपूर्वक यह पुस्तिका अर्पण करता हूँ और भावना करता हूँ कि आपके बताये मार्ग पर निश्चलरूपसे चलकर निश्रेयम अवस्थाको प्राप्त करू ।

विनम्र सेवक —

महेन्द्रकुमार सेठी

निवेदन

जब कि मैं सावन मास सं० २०१३ में प्रौढ शिक्षणवर्गमें अभ्यास करनेके लिये सोनगढ गया था और वर्गमें अभ्यास करता था उस समय अभ्यासियोंको पूछे जानेवाले प्रश्नोंको जिसप्रकार सुन्दर रीतिसे समझाया जाता था वह प्रश्नोत्तरकी शैली समझकर मेरे हृदयमें यह भाव जागृत हुआ कि अगर ये प्रश्नोत्तर भले प्रकार से संकलन करके स्कूल एवं पाठशालाओंमें जैनधर्मकी शिक्षा लेनेवाले शिक्षार्थियोंको सुलभ कर दिये जावें तो सत् धर्मकी भले प्रकारसे प्रभावना हो और बहुत लोगोंको लाभ मिल सके। यह भाव जागृत हुये थे कि मालुम हुआ श्रद्धेय वयोवृद्ध श्री रामजी भाई माणेकचन्दजी दोशी, सपादक, आत्मधर्म एवं प्रमुख, श्री जैन स्वा० मदिरने बहुत प्रयास करके लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिकाके प्रश्नों पर सर्वांग सुन्दर पुस्तिका गुजरातीमें तैयार की है और वह बहुत अच्छी तात्त्विक पुस्तक है, यह पढकर मुझे बहुत हर्ष हुआ और मैंने उसको हिन्दी अनुवाद करनेके लिये भेज दिया। इसीसमय मेरा यह भाव जागृत हुआ कि एक ग्रन्थ-माला चालू की जावे जिसका नाम सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला हो तथा वह भलेप्रकारसे आगामी भी चलते रहे। उसके लिये मैंने मेरे पूज्य श्री पिताजीकी आज्ञानुसार एक ट्रस्ट बनानेका निर्णय किया जिसका नाम श्री मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट रखा। उसी ट्रस्टके अतर्गत यह सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला चालू की है जिसके पुष्प नं० १-२-३ के रूपमें जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर मालाके तीनों भाग प्रकाशित हुये हैं। तीसरा भाग छपते ही तुरन्त बिक गया और उसकी जोरोंसे माग चालू है अत तीसरी आवृत्ति छपाई है।

इसके प्रथम भागमें द्रव्य, गुण, पर्याय तथा अभाव इन चार विषयोंसे सम्बन्धित अनेक प्रकारके प्रश्न उठाकर उनके आगम, न्याय युक्ति एव स्वानुभव सहित बहुत ही सुन्दर, विस्तृत उत्तर दिये हैं—

प्रस्तावना

वि० स० २०१० के श्रावण मासमें भी प्रतिवर्षकी भाँति प्रौढ जैन शिक्षणवर्गका आयोजन हुआ था। उससमय अध्ययनमे "श्री लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका" तथा "श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक" का नववाँ अधिकार जैन धार्मिक शिक्षणके रूपमे रखा गया था। अध्यापक श्री हीराचन्दजी भाई आदिने तत्त्वज्ञान विषयक जो जो प्रश्न अभ्यासियोको पूछे थे–लिखाये थे उन प्रश्नोको व्यवस्थितरूपसे सकलित करके पुस्तकाकार प्रकाशित करानेका विचार हुआ था; उसीके फलस्वरूप जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला–भा० १–२ और तीसरे भागकी यह पुस्तक प्रकाशित हुई है।

प्रथम भागमें–द्रव्य, गुण, पर्याय और चार अभाव सम्बन्धी विस्तारसे स्पष्टीकरण करनेवाले चार प्रकरण दिये गये हैं।

दूसरे भागमें–कर्ता कर्मादि छह् कारक, उपादान निमित्त तथा निमित्त नैमित्तिक, सात तत्त्व–नव पदार्थ (–सात तत्त्व सम्बन्धमे भूल' देव-शास्त्र-गुरुका स्वरूप, पच परमेष्ठिका स्वरूप तथा जैनधर्म उनका वर्णन अध्याय (–प्रकरण) पृष्ठ ५-६-७ मे दिया है।

तीसरे भागमें–८-९-१० प्रकरण हैं। वह पुस्तक आपके सामने है। इसमे आठवें प्रकरणमे लक्षण, प्रमाण, नय, निक्षेप, जैन-शास्त्रमे पाँच प्रकारसे अर्थ करनेकी पद्धति और नयाभासोका वर्णन है।

नववें प्रकरणमे लक्षण अनेकान्त और स्याद्वाद और दसवें प्रकरणमे मोक्षमार्गका अधिकार है जिसमे पुरुषार्थ, स्वभाव, काल नियति और कर्म ये पाँच समवाय और मोक्षमार्ग विषयक अनेक

क्योकि दोनो नयोका स्वरूप परस्पर–विरुद्ध है इसलिये दोनो नयो का उपादेयपन नही वन सकता। अभीतक तो यही धारणा थी कि न केवल निश्चय उपादेय है और न केवल व्यवहार, किन्तु दोनो ही उपादेय हैं, किन्तु प० जी ने उसे मिथ्यादृष्टियोकी प्रवृत्ति वतलाई है। "

(२) सर्वज्ञ स्वभाव :—

आत्माकी अनन्त शक्तियोमेसे "सर्वज्ञत्व और सर्व-दर्शित्व" –ऐसी दो शक्तियोकी पूर्ण शुद्धपर्याय होनेपर आत्मा सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी होता है, उसमे सर्वज्ञ स्वभाव द्वारा जगत्के सर्व द्रव्य, उनके अनत गुण, अनादि–अनन्त पर्याये, अपेक्षित धर्म और उनके अविभाग प्रतिच्छेद—इन सवको युगपत् एक समयमे स्पष्टतया जानता है और उस ज्ञानसे कुछ भी अजान नही रहता, इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक द्रव्यकी पर्याये क्रमबद्ध होती है, कोई भी पर्याय उल्टी सीधी नही होती।

प्रथमानुयोगके शास्त्रोमे श्री तीर्थंकर भगवानने तथा श्री केवली भगवन्तोने अनेक जीवोकी भूत–भावी पर्याये स्पष्टरूपसे वतलाई हैं तथा अवधिज्ञानी मुनियोने भी अनेक जीवोके भूत–भावी भवोकी बातें कही है। इसलिये यदि ऐसा न माना जाये कि प्रत्येक द्रव्यकी पर्यायें क्रमबद्ध होती हैं, तो वे शास्त्र मिथ्या सिद्ध होगे।

कोई कहते हैं कि भगवान अपेक्षित धर्मको नही जानते भविष्य-की पर्यायें प्रगट नही हुई हैं इसलिये उन्हे सामान्यरूपसे जान सकते है किन्तु विशेषरूपसे नही जान सकते, और कोई ऐसा कहते हैं कि–यदि भगवान भूत–भविष्यको स्पष्ट जानते हो तो मेरी पहली और

तीसरी आवृत्तिके विषयमें प्रस्तावना :—

जैन समाजमे यह प्रश्नोत्तर माला भाग १–२–३ का प्रचार बढ रहा है और बढता रहेगा, यह बात प्रसिद्ध है। अत जैनधर्ममे प्रवेश पानेके लिए मूलभूत–प्रयोजनभूत बातका शास्त्रोक्त समाधान होनेसे यह पुस्तकोकी माँग चालू है। धर्म जिज्ञासु उसका अच्छी तरहसे लाभ लेवे ऐसी भावनासे यह तीसरी बार प्रकाशन हुआ है।

आभार दर्शन :—

यह पुस्तक तैयार करनेमे ब्र० गुलाबचन्दजी जैन आदि जिन २ स्वधर्मी बन्धुओने सहयोग दिया है उन सबका आभार मानता हूँ।

सोनगढ
वीर स० २४८८

रामजी माणेकचन्द दोशी
प्रमुख—श्री दि० जैन स्वाध्याय मदिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र)

अयोगी जिन गुणस्थानक २३६
अलक्ष्य ३३
अविनाभाव सम्बन्ध ५०
अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान २१३
असद्भूत व्यवहारनय ७५-७६
सच्चा सुख १६३-१६५

[आ]

आगम ४८
आगमार्थ ८५-८६
आत्मा स्वचतुष्टयसे है, परचतुष्टयसे नहीं है-उस अनेकांत सिद्धान्तपरसे क्या समझना ? ११७
आध्यात्मिक दृष्टिसे व्यवहारनय ७६

[उ]

उपचरित असद्भूत व्यवहारनय ७७-७६
उपचरित असद्भूत व्यवहारनय ७३-७६
उपशम श्रेणी २२३
उपशम श्रेणीके गुणस्थानक २२६
उपशम मोह गुणस्थानक २३३
उपादेय १७३

[ऋ]

ऋजुसूत्रनय ६६
ऋजुसूत्रनय और भाव निक्षेपमें अन्तर १००

[ए]

एक ही द्रव्यमें दो विरुद्ध धर्म क्यों ? ११६

गुणस्थान चौथा २१३
" " पाँचवाँ २१४
" " छठवाँ २१५
" " सातवाँ २१६
" " आठवाँ २३०
" " नववाँ २३१
" " दसवाँ २३२
" " ग्यारहवाँ २३३
" " बारहवाँ २३४
" " तेरहवाँ २३५
" " चौदहवाँ २३६

[च]

चारित्रमें सम्यक् शब्द क्या सूचित करता है ? १५७
चारित्रका लक्षण (स्वरूप) १६७
चारित्र मोहनीयके उपशम तथा क्षयको आत्माके कौनसे भाव निमित्त हैं ? २२८

[ज]

जगतमें सब भवितव्य (नियति) आधीन है इसलिये धर्म होना होगा तो होगा—यह मान्यता ठीक है ? १२३
जीवको धर्म समझनेके लिये क्या क्रम है ? १४३
जीव द्रव्यको सप्तभगीमें ११०
जीव और शरीरमें अनेकान्त ११८
जीवका क्षायिक ज्ञान, सर्वज्ञताकी महिमा—परिशिष्ट पृ० १०५
जीवके असाधारण भाव १७४-१८०

निक्षेप ६४ ६८
निर्जरा ३-१६६
नयार्थ ८५
नैगमनय ६१-६२-६६
नय ५३ ५४-६३
नय के दूसरी रीति से कौनसे प्रकार हैं ? ८४
निश्चयनय ५५-५७
निश्चयनय, व्यवहारनय के ग्रहण-त्यागमें विवेक ८१
निश्चयनयके आश्रय विना सच्चा व्यवहार हो सकता है ? ८८
निश्चय सम्यग्दर्शनके भेद २०६
निश्चय और व्यवहार—ऐसा दो प्रकार का सम्यग्दर्शन है ? १५१
निश्चय और व्यवहार—ऐसा दो प्रकार का सम्यग्दर्शन और चारित्र है ? १५२-५३
निश्चय रत्नत्रयकी पूर्ण एकता एक साथ है ? २०१-२
निमित्त और उपादान दोनों मिलकर कार्य करते हैं-ऐसा मानने में क्या दोष ? १३२

[प]

पदार्थों को जानने के कितने उपाय हैं ? २६
पर्यायार्थिकनय ५६-६५
परोक्षप्रमाण ४६-४७-४८
पंचाध्यायी अनुसार अध्यात्म नयों तथा नयाभासों का स्वरूप ६३
पर्याय में क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध ऐसा अनेकान्त है ? ११

प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन
प्रयोजनभूत तत्त्वों को यथार्थ जानने से लाभ
प्रत्यभिज्ञान
प्रमत्त विरत नामक गुणस्थान का स्वरूप
प्रमाण
प्रत्यक्ष प्रमाण
प्रत्यक्ष प्रमाण के भेद
पाँच समवाय
उनमें द्रव्य-गुण-पर्याय
पाँच भावों में से किस भावके आश्रय से धर्म का प्रारम्भ,
पूर्णता होती है ?
पारमार्थिक प्रत्यक्ष
पारिणामिकभाव
पारिणामिक भावके भेद
पुरुषार्थ से ही धर्म होता हो तो द्रव्यलिंगी मुनि ने मोक्ष के
लिये गृहस्थपना छोड़कर बहुत पुरुषार्थ किया तथापि धर्म
की सिद्धि क्यों नहीं हुई ?

[ब]

दो विरुद्ध धर्मों सहित वस्तु सत्यार्थ होती है ?
बाह्य सामग्री के अनुसार सुख-दुःख है ?

[भ]

भावि नैगमनय
भाव निक्षेप

सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र प्रगट न होने में कर्म निमित्त कारण है, इसलिये धर्म न होने में जड़ कर्मका दोष है? १३५
सम्यग्दर्शन दो प्रकार से है? १५१
सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् देश चारित्र या सकल चारित्र का पुरुषार्थ कब प्रगट होता है? १४९
सम्यग्दर्शन में सम्यक् शब्द क्या बतलाता है? १५६
सम्यक्त्व १४६
सम्यग्दर्शन होने पर कैसी श्रद्धा होती है? १४७
सम्यक्नय और नयाभास (मिथ्यानय) ९३
सम्यक्त्वी जीव विषयों में क्यों वर्तता है? १४८
सम्यक् अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त १०५–८
सम्यक् चारित्र प्रगट करनेके पश्चात् धर्मी जीव क्या करता है? १५०
सप्तभंगी ११०
सर्वज्ञता की महिमा १९१
संवर-निर्जरा का उपाय २००
संग्रहनय ६३
समभिरूढ़नय ६८
सयोगी गुणस्थानक २३५
स्याद्वाद १०६
स्वरूप विपरीतता १३०
स्वस्थान अप्रमत्त विरत (सातवाँ गुणस्थान) २१८
स्मृति ४८

सर्व प्राणी सुख चाहते हैं, उसका उपाय करते हैं, तथापि क्यों
प्राप्त नहीं करते ? १६२
सात तत्त्वों की श्रद्धा में देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा ११-१४२
सातिशय अप्रमत्त विरत (सातवाँ गुणस्थान) २१६
साधन ५१
साधकको अस्ति-नास्तिके ज्ञानसे क्या लाभ ? ११४
सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ४१
साध्य ५२
स्थापना निक्षेप ६६
सिद्ध भगवान को किसी अपेक्षा से सुख और किसी अपेक्षासे
दुःख प्रगट होता है—ऐसा अनेकान्त है ? १११
सुख का स्वरूप १६३, १६४, १६५
सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान २१७

[ह]

हेय तत्त्व १७१
हेय, ज्ञेय, उपादेय १७०

[क्ष]

क्षपक श्रेणी २२४
क्षपक श्रेणीके गुणस्थानक २२७
क्षायिकभाव १७६
क्षायिकभावके भेद १८२
क्षायोपशमिक भाव १७७

क्षायोपशमिकके भेद १८३

क्षीण मोह गुणस्थानक २३४

[ज्ञ]

ज्ञाननय ८४

ज्ञानीका उपदेश मिलने पर भी तत्व निर्णयका पुरुषार्थ न करे, व्यवहार धर्म कार्यों में प्रवर्ते तो उसका क्या फल है ... १६५

ज्ञेय १७२

प्रकरण आठवाँ

प्रमाण, नय और निक्षेप अधिकार

प्रश्न (२६)–पदार्थोंको जाननेके कितने उपाय है ?

उत्तर—चार उपाय हैं—१–लक्षण, २–प्रमाण, ३–नय, और ४–निक्षेप।

लक्षण—

प्रश्न (२७)–लक्षण किसे कहते है ?

उत्तर—अनेक सम्मिलित पदार्थोंमें से किसी एक पदार्थको पृथक् करने वाले हेतुको लक्षण कहते है, जैसे कि–जीवका लक्षण चेतना।

प्रश्न (२८)–लक्ष्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसका लक्षण किया जाये उसे लक्ष्य कहते है, जैसे कि—"जीवका लक्षण चेतना"–उसमें जीव लक्ष्य है।

(लक्षण से जिसे पहिचाना जाता हो वह लक्ष्य)

प्रश्न (२९)–लक्षणाभास किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो लक्षण सदोष हो वह लक्षणाभास कहलाता है।

प्रश्न (३०)–लक्षणके कितने दोष हैं ?

उत्तर—तीन—१–अव्याप्ति २–अतिव्याप्ति और ३–असभव।

प्रश्न (३१)–अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर–लक्ष्यके एक देश में (एक भाग में) लक्षणका रहना उसे अव्याप्तिदोष कहते हैं, जैसे कि—पशुका लक्षण सीग।

मानने से पुद्गलादि भी आत्मा हो जायेंगे और आत्मा है वह अनात्मा हो जायेगा—यह दोष आयेगा।"

(मो० मा० प्र० देहलीवाला पृ० ४६४)

प्रश्न (३५)–सच्चा लक्षण किसे कहते हैं ?

उत्तर—"जो लक्षण लक्ष्य मे तो सर्वत्र हो और अलक्ष्य में किसी भी स्थान पर न हो वही सच्चा लक्षण है, जैसे कि–आत्माका लक्षण चैतन्य, चूंकि वह लक्षण सभी आत्माओ में होता है और अनात्मा मे कही भी नही होता, इसलिये वह सच्चा लक्षण है। उसके द्वारा आत्मा को मानने से आत्मा और अनात्मा का यथार्थ ज्ञान होता है, कोई दोष नही आता " (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ४६५)

प्रमाण

प्रश्न (३६)–प्रमाण किसे कहते हैं ?

उत्तर—१—"स्व और परपदार्थ का निर्णय करने वाले ज्ञान को प्रमाण अर्थात् सच्चा ज्ञान कहते हैं।

(परीक्षामुख—परि० १, सूत्र १)

२—सच्चे ज्ञानको प्रमाणज्ञान कहते हैं।

(जैन सिद्धान्त प्रवेशिका)

३—अनत गुणो अथवा धर्मों के समुदायरूप अपना तथा परवस्तुका स्वरूप प्रमाण द्वारा जाना जाता है। प्रमाण वस्तुके सर्व देशको (सभी पक्षोको) ग्रहण करता है–जानता है।

(प्रकाशक स्वा० मोक्षशास्त्र, अ० १, सू० ६ टीका)

प्रश्न (३७)–प्रमाण का विषय क्या है ?

उत्तर—सामान्य अथवा धर्मी, और विशेष अथवा धर्म—इन दोनो अशो के समूहरूप वस्तु वह प्रमाण का विषय है।

उत्तर—केवलज्ञान को सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते है।

प्रश्न (४६)–परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं ?

उत्तर—१—जो निमित्त के सम्बन्ध से पदार्थ को अस्पष्ट जाने उसे परोक्ष प्रमाण कहते हैं।

(जैन सिद्धान्त प्रवेशिका)

२—"जो इन्द्रियो से स्पर्शित होकर वर्ते तथा जो चक्षु और मनसे अस्पर्श्य रहकर वर्ते—इस प्रकार दो पर द्वारो से प्रवर्तमान हो वह परोक्ष है।

(मोक्षशास्त्र अध्याय १ सू० ६ की टीका)

प्रश्न (४७)–परोक्ष प्रमाण के कितने भेद है ?

उत्तर—दो भेद हैं—१–मतिज्ञान, २–श्रुतज्ञान। [मति, श्रुतादि पाच प्रमाण ज्ञान के सम्बन्ध में देखिये—प्रकरण दूसरा, प्रश्न १६०–१६१, तथा प्रकरण तीसरा, प्रश्न २६७ से २७७]

प्रश्न (४८)–परोक्ष प्रमाण के अन्य किस प्रकार से भेद है ?

उत्तर—उसके अन्य पाँच भेद हैं—१–स्मृति, २–प्रत्यभिज्ञान, ३–तर्क, ४–अनुमान, और ५–आगम।

(१) स्मृति—पूर्वकाल में देखे–जाने या अनुभव किये पदार्थ को याद करना उसे स्मृति कहते हैं।

(२) प्रत्यभिज्ञान—स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थों मे जोडरूप ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते है, जैसे कि–यह वही मनुष्य है जिसे कल देखा था।

(३) तर्क—१—व्याप्ति के ज्ञान को तर्क–कहते है, अथवा २ हेतु से जो विचार मे लिया उस ज्ञान को तर्क कहते है।

उत्तर—जहां-जहां साधन (हेतु) हो वहां-वहां साध्यका होना, और जहां-जहां साध्य न हो वहां-वहां साधनका भी न होना-उसे अविनाभाव सम्बन्ध कहते है, जैसेकि-जहां-जहां स्वात्मदृष्टि है वहां-वहां धर्म होता है और जहां-जहां धर्म नही है वहां-वहां स्वात्मदृष्टि भी नही है।

प्रश्न (५१) साधन किसे कहते है ?

उत्तर—जो साध्यके विना न हो उसे साधन कहते है, जैसेकि-धर्म का हेतु (साधन) स्वात्मदृष्टि।

प्रश्न (५२)-साध्य किसे कहते है ?

उत्तर—इष्ट अबाधित असिद्धको साध्य कहते है ?

नय

प्रश्न (५३)-नय किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१)-वस्तुके एकदेश (भाग) को जाननेवाले ज्ञानको नय कहते हैं। (जैनसिद्धान्त प्र०)

(२)-प्रमाण द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थके एक धर्मका जो मुख्यतासे अनुभव कराता है वह नय है।

(पुरुपार्थ सिद्धयुपाय गा० ३१ की टीका)

३-"प्रमाण द्वारा निश्चित् हुई वस्तुके एकदेशको जो ज्ञान ग्रहण करे उसे नय कहते है।

४-प्रमाण द्वारा निश्चित हुई अनत धर्मात्मक वस्तुके एक-एक अगका ज्ञान मुख्यरूपसे कराये वह नय है। वस्तुओ में अनतधर्म हैं, इसलिये उनके अवयव अनत तक हो सकते है, और इसलिये अवयवके ज्ञानरूप नयभी अनत तक हो सकते हैं।

[प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेषात्मक है, उन दोनो (सामान्य और विशेष) को जाननेवाले द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक नयरूपी दो ज्ञानचक्षु है। "द्रव्यार्थिकनयरूपी एक चक्षुसे देखने पर द्रव्य सामान्य ही दिखाई देता है, इसलिये द्रव्य अनन्य अर्थात् ज्योका त्यो भासित होता है, और पर्यायार्थिक नयरूपी दूसरे (एक) चक्षुसे देखनेपर द्रव्यके पर्यायरूपी विशेष ज्ञात होते हैं इसलिये द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है। दोनो नयोरूपी दोनो चक्षुओमे देखनेपर द्रव्य सामान्य तथा द्रव्यके विशेष—दोनो ज्ञात होते हैं, इसलिये द्रव्य अनन्य तथा अन्य-अन्य दोनो भासित होता है।"

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक—दोनो नयो द्वारा वस्तुका जो ज्ञान होता है वही प्रमाण ज्ञान है।

(देखो, श्री प्रवचनसार गाथा ११४ का भावार्थ)

प्रश्न (६०)-द्रव्यार्थिक नयके कितने भेद हैं? (आगम अपेक्षा से)।

उत्तर—तीन भेद है—(१) नैगमनय, (२) सग्रहनय, और (३) व्यवहारनय।

प्रश्न (६१)-नैगमनय किसे कहते है?

उत्तर—(१) "जो भूतकालीन पर्याय मे वर्तमानवत् सकल्प करे अथवा भविष्यकालीन पर्यायमे वर्तमानवत् सकल्प करे तथा वर्तमान पर्यायमे कुछ निष्पन्न (प्रगटरूप) है और कुछ निष्पन्न नही है उसका निष्पन्नरूप सकल्प करे उस ज्ञानको तथा वचनको नैगमनय कहते हैं।"

[Figurative]—(मोक्षशास्त्र अ० १, सूत्र ३३ की टीका)

(२)-जो नय अनिष्पन्न अर्थके सकल्प मात्रको ग्रहण करे वह नैगमनय है, जैसेकि—लकडी पानी आदि सामग्री एकत्रित करने

२—भाविनैगमनय

भविष्यत कालमें होनेवाली बातको भूतकालवत् हुई कहना सो भावी नैगमनय है। जैसेकि—अरिहत भगवानको सिद्ध भगवान कहना।

३—वर्तमान नैगमनय

कोई कार्य प्रारम्भ तो कर दिया हो, किन्तु वह कार्य कुछ हुआ—कुछ न हुआ हो, तथापि उसे पूर्ण हुए समान कहना सो वर्तमान नैगमनय है। जैसेकि—भात पकानेका कार्य आरम्भ तो कर दिया, परन्तु अभी वह पका नही है, तथापि ऐसा कहना कि—भात पक रहा है।

(आलाप पद्धति पृष्ठ ६५–६६)

प्रश्न (६३)–सग्रहनय किसे कहते है ?

उत्तर—जो नय अपनी जातिका विरोध न करके समस्त पदार्थोंको एकत्वसे ग्रहण करे उसे सग्रहनय कहते हैं। जैसेकि—सत्, द्रव्य इत्यादि।

प्रश्न (६४)–व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो नय सँग्रहनयसे ग्रहण किये पदार्थोंका विधिपूर्वक भेद करे उसे व्यवहारनय कहते हैं। जैसेकि—सत् दो प्रकारसे है–द्रव्य और गुण। द्रव्यके छह भेद हैं–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। गुणके दो भेद हैं–सामान्य और विशेष। इसप्रकार जहाँतक भेद हो सकते वहाँतक यह नय भेद करता है।

प्रश्न (६५)–पर्यायार्थिकनयके कितने भेद हैं ?

प्रश्न (७०)–व्यवहारनय अथवा उपनयके कितने भेद है ?

उत्तर—दो भेद है—(१) सद्भूत व्यवहारनय और (२) असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न (७१)–सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते है ?

उत्तर—जो एक पदार्थमे गुण–गुणीको भेदरूपसे ग्रहण करे उसे सद्भूत व्यवहारनय कहते है।

—(जैन सिद्धान्त दर्पण पृ० ३४)

प्रश्न (७२)–सद्भूत व्यवहारनयके कितने भेद है ?

उत्तर—दो भेद हैं—(१) उपचरित सद्भूत व्यवहारनय और (२) अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न (७३)–उपचरित सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते है ?

उत्तर—१–जो उपाधि सहित गुण–गुणीको भेदरूपसे ग्रहण करे उसे उपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहते है, जैसेकि–जीवके मतिज्ञानादिक गुण।

(जैन सिद्धान्त दर्पण)

२–जो नय कर्मोपाधि सहित अखण्ड द्रव्यमे अशुद्ध गुण अथवा अशुद्ध गुणी, तथा अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायवान्की भेद-कल्पना करे उसे उपचरित सद्भूत व्यवहारनय (अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय) कहते हैं, जैसेकि–ससारी जीवके अशुद्ध मति-ज्ञानादिक गुण अथवा अशुद्ध नरनारकादि पर्यायें।

—(आलाप पद्धति)

प्रश्न (७४)–अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो निरुपादिक गुण और गुणीको भेदरूप ग्रहण करे उसे अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं, जैसेकि–जीवके केवल-

२—जीवके कर्म और जीवका शरीर कहना वह असद्भूत है। असद्भूतका अर्थ मिथ्या, असत्य, अयथार्थ है।

—(देखो, परमात्म प्रकाश अ०-१, गाथा ६५ की हिन्दी टीका प्रवचनसार अ० १, गाथा १६ की हिन्दी टीका, प्रवचनसार अ० १, गाथा १६ की गुज० टीका)

३—यह नय जीवका पर पदार्थके साथका सम्बन्ध बतलाता है इसलिये व्यवहारनय कहलाता है।

४—व्यवहारको अभूतार्थ भी कहा जाता है, अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ। पदार्थका जैसा स्वरूप न हो वैसा अनेक कल्पना करके व्यवहारनय प्रकट करता है, इसलिये उसे अभूतार्थ कहा जाता है। जैसे मृषावादी तुच्छ भी (किंचित् भी) कारणका छल पा जाये तो अनेक कल्पना करके तादृशकर दिखाता है, उसीप्रकार यद्यपि जीव और पुद्गलकी सत्ता भिन्न है, स्वभाव भिन्न है, प्रदेश भिन्न है, तथापि एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धका छल पाकर व्यवहारनय आत्मद्रव्यको शरीरादिक पर द्रव्यके साथ एकत्व बतलाता है, इसलिये वह व्यवहारनय असत्यार्थ है। मुक्तदशामे व्यवहारनय स्वय ही, जीव और शरीर दोनो भिन्न है—ऐसा प्रकाशित करता है.

—देखो, कलकत्तेसे प्रकाशित स्व० प० टोडरमलजी कृत मूल टीका वाला ग्रन्थ (पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय पृष्ठ ६-७)

प्रश्न (७८)—आध्यात्मिकदृष्टिसे व्यवहारनयका स्वरूप कहिये।

उत्तर—पचाध्यायी भाग १, गाथा ५२५ से ५५१ में व्यवहारनयके चार प्रकारोका वर्णन किया है। यहाँ साररूप में—

उत्तर—१—द्रव्यार्थिकनयका विषय त्रिकाली द्रव्य है और पर्यायार्थिक-नयका विषय क्षणिक है। द्रव्यार्थिकनयके विषयमे गुण भिन्न नही है, क्योकि गुणको पृथक् करके लक्षमे लेने से विकल्प उठता है, और विकल्प वह पर्यायार्थिक नय का विषय है।

(प्रकाशक स्वाध्यायमन्दिर मोक्षशास्त्र अ० १, सूत्र ६ टीका पृ० ३०)

२—द्रव्यार्थिकनयको निश्चयनय और पर्यायार्थिकनयको व्यव-हारनय कहते हैं।

प्रश्न (८१)—निश्चयनय और व्यवहारनय—दोनोके ग्रहण—त्यागमें क्या विवेक रखना आवश्यक है ?

उत्तर—ज्ञान दोनो नयोका करना, किन्तु उनमे परमार्थ निश्चयनय आदरणीय है—ऐसी श्रद्धा करना।

श्री मोक्षपाहुड मे कहा है कि—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ॥३१॥

अर्थ—जो योगी व्यवहारमे सोता है वह अपने कार्यमें जागता है, और जो व्यवहारमें जागृत रहता है वह अपने कार्यमे (आत्म-कार्यमें) सोता है।

"व्यवहारनय स्वद्रव्य—पर—द्रव्यको तथा उनके भावोको तथा उनके कारण-कार्यादिकको किसीमें मिलाकर निरूपण करता है इसलिये ऐसे ही श्रद्धानसे, मिथ्यात्व है, इसलिये उसका त्याग करना चाहिये।"

"निश्चयनय उनका यथावत् निरूपण करता है तथा किसीका

किसीमें मिलता नहीं है,
इसलिये उसका श्रद्धान करना
"निश्चयका निश्चयरूप तथा
करना योग्य है किन्तु एक ही समकाल
रूप होता है।"
'निश्चय द्वारा जो निरूपण किया हो
उसका श्रद्धान अंगीकार करना तथा
किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान
[देखो मोक्षमार्ग प्र० प्रकाशित पृ २६८ पृष्ठ
प्रश्न (८२)—व्यवहारनय और निश्चयनयका क्या कहाँ है,
उत्तर:— वीतराग कथित व्यवहार अशुभमेंसे
शुभ भावमें ले जाता है जिसका
वह भगवानके कहे हुए व्रतादिका
और उससे शुभ भाव द्वारा नवमें ग्रैवेयकमें जाता है
उसका संसार बना रहता है और भगवानका
निश्चय शुभ तथा अशुभ दोनोंसे बचाकर
मोक्षमें ले जाता है उसका दृष्टान्त सम्यग्दृष्टि है
नियम से (निश्चित) मोक्ष प्राप्त करता है।"
[प्रकाशक स्वा मं० ट्रस्ट मोक्षशास्त्र अ १ पृ० ६
प्रश्न (८३)—जैनशास्त्रोंमें दोनों नयोंका ग्रहण करना कहा
किस प्रकार ?
उत्तर—"जिनमार्गमें किसी स्थानपर तो
व्याख्यान है उसे तो 'सत्यार्थ ऐसा ही है'
तथा किसी स्थानपर व्यवहारनयकी

उसे "ऐसा नहीं है किन्तु निमित्तादि की अपेक्षासे यह उपचार किया है"–ऐसा जानना, और इसप्रकार जाननेका नाम ही दोनो नयोका ग्रहण है, किन्तु दोनो नयोके व्याख्यानको समान सत्यार्थ जानकर "इसप्रकार भी है तथा इस प्रकार भी है"–ऐसे भ्रमरूप प्रवर्तनसे तो दोनो नय ग्रहण करनेको नही कहा है।" [मोक्षमार्ग प्रकाशक, देहली प्र० पृ० ३६६]

प्रश्न (८४)–नयके अन्य रीतिसे कितने प्रकार है?

उत्तर—तीन प्रकार हैं–१–शव्दनय, २–अर्थनय, और ३–ज्ञाननय।

१–शव्दनय –ज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थका प्रतिपादन शव्द द्वारा होता है, इसलिए उस शव्दको शव्दनय कहते है, जैसेकि–"मिसरी" शव्द वह शव्दनयका विपय है।

२–अर्थनय –ज्ञानका विपय पदार्थ है, इसलिये नयसे प्रति–पादित किये जानेवाले पदार्थको भी नय कहते हैं, वह अर्थनय है। जैसेकि–"मिसरी" शव्दका वाच्य पदार्थ अर्थनयका विषय है।

"ज्ञानात्मकनय वह परमार्थसे नय है और वाक्य उपचारसे नय है।"
—[श्री धवल टीका, पु० ९ वी पृ० १६४]

३–ज्ञाननय –वास्तविक प्रमाण ज्ञान है, वह जव एक देशग्राही होता है तव उसे नय कहते है, इसलिये उसे ज्ञाननय कहते हैं, जैसे कि–"मिसरी" पदार्थका अनुभवरूप ज्ञान वह ज्ञाननयका विषय है।

विशेष

१–शास्त्रोके सच्चे रहस्यको समझनेके लिए नयार्थ समझना चाहिये। उसे समझे बिना चरणानुयोगका कथन भी समझनेमे नही आता। गुरुका उपकार माननेका कथन आये वहाँ समझना कि गुरु परद्रव्य है, इसलिये वह व्यवहारका कथन है

चरणानुयोगके शास्त्रमें गुरु
समझना कि उस रागकी [illegible]
प्रवचनसारमें शुद्धता और शुद्धताकी वृद्धि
में (निश्चय से) यह मिलता नहीं है।
किन्तु चरणानुयोगके शास्त्रमें ऐसा कथन
यह कथन व्यवहारनयका कथन है। शुद्धता
को निमित्तमात्र मित्र कहा है। उसका यथार्थ तो
में वह वीतरागताका शत्रु है किन्तु निमित्तका ज्ञान
व्यवहारनय द्वारा ऐसा ही कथन होता है।

२—जो जैन पूजा व्रत दानादि शुभक्रियाको धर्म मानते
मतके बाहर हैं क्योंकि भावपाहुड गाथा ८४–८५ में
कहा है कि—

"शुभक्रियारूप पुण्यको धर्म मानकर जो उसका [illegible] श्रद्धान
आचरण करे उसे पुण्यकर्मका बंध होता है उससे स्वर्गादिके भोग
की प्राप्ति होती है किन्तु उससे कर्मके क्षयरूप संवर–निर्जरा–मोक्ष
नहीं होता. मोह क्षोभ रहित आत्माके परिणाम ही धर्म है।
यह धर्म ही संसारसे पार उतारनेवाला मोक्षका कारण है—ऐसा
श्रीभगवानने कहा है।

३—'लौकिकजन तथा अन्यमती कोई कहे कि—जो पूजादिक शुभ
क्रिया और व्रतक्रिया सहित हो वह जैनधर्म है किन्तु ऐसा नहीं है—
उपवास व्रतादि जो शुभक्रिया है जिसमें आत्माके रागसहित शुभ
परिणाम हैं उससे पुण्यकर्म उत्पन्न होता है इसलिये उसे पुण्य कहते
हैं और उसका फल स्वर्गादिक भोगकी प्राप्ति है ......जो विकार
रहित शुद्ध दर्शन–ज्ञानरूप निश्चय हो वह आत्माका धर्म है उसमें

से आत्माको आगामी कर्मोका आसृव रुककर सवर होता है और पूर्वकालमे वाधे हुए कर्मोकी निर्जरा होती है। सम्पूर्ण निर्जरा होने पर मोक्ष होता है " [भावपाहुडगाथा ८३ का भावार्थ]

४–जो परमात्माकी पूजा–भक्ति आदि शुभ रागसे अपना हित होना माने, तथा परमात्माका स्वरूप अन्यथा मानें वह मिथ्यामतावलवी है।

प्रश्न (८५)–जैनशास्त्रोमे अर्थ समभनेकी रीति क्या है ?

उत्तर—जैनशास्त्रोके अर्थ समभनेकी रीति पाच प्रकारकी है–१–शव्दार्थ, २–नयार्थ, ३–मतार्थ, ४–आगमार्थ, और ५–भावार्थ।

१–शव्दार्थ—प्रकरण अनुसार वाक्य या शव्दका योग्य अर्थ ममभना।

२–नयार्थ–किस नयका वाक्य है ? उसमे भेद–निमित्तादिका उपचार वतलानेवाले व्यवहारनयका कथन है या वस्तु स्वरूप वतलानेवाले निश्चयनयका कथन है—उसका निर्णय करके अर्थ करना वह नयार्थ है।

३—मतार्थ–वस्तु स्वरूपसे विपरीत ऐसे किस मत (साख्य-वौद्धादिक) का खण्डन करता है और स्याद्वाद मतका मण्डन करता है—इसप्रकार शास्त्रका कथन समभना वह मतार्थ है।

४–आगमार्थ–सिद्धान्तानुसार जो अर्थ प्रसिद्ध हो तदनुसार करना वह आगमार्थ है।

५–भावार्थ–शास्त्र कथनका तात्पर्य–साराश, हेय–उपादेय रूप हेतु क्या है उसे जो वतलाये वह भावार्थ है। निरजन ज्ञानमयी परमात्म द्रव्य ही उपादेय है, इसके सिवा निमित्त अथवा किसी

प्रकारका राग या विकल्प
समझना।

प्रश्न (८६)—निम्नोक्त श्लोकका [illegible] करके समझाइये—

> ये जाता [illegible] [illegible]
> [illegible]

१—शब्दार्थ—(ये) जो (ध्यानाग्निना)
(कर्मकलङ्कानि) कर्मरूपी मैलको (दग्ध्वा) जला
नित्यनिरञ्जनज्ञानमया जाता) नित्य निरंजन और
उन (परमात्मन) सिद्धोंको (नत्वा) नमस्कार करके...

२—नयार्थ—(कर्मकलङ्कानि दग्ध्वा परमात्मानः [illegible])
कर्म मल भस्म करके सिद्ध हुए —यह पर्यायार्थिक नयसे
कथन है। इसका मर्म यह है कि उन्होंने पहले कभी सिद्ध
प्राप्त नहीं की थी यह अब उन्होंने कर्मोंका नाश करके प्राप्त
द्रव्यार्थिक नयसे तो वे शक्तिकी अपेक्षासे सदा शुद्ध शुद्ध
स्वभावरूप थे ही अर्थात् शुद्ध नयसे वे शक्तिरूप शुद्ध थे
अब पर्यायार्थिक नयसे व्यक्तिरूप शुद्ध हुए (सिद्ध पर्यायरूप हुए)

३—मतार्थ—(नित्यनिरञ्जनज्ञानमया) नित्य निरंजन
और ज्ञानमय—इस कथन में 'नित्य' विशेषण एकान्तवादी बौद्धों
के मतका परिहार करता है—जो आत्माको क्षणिक मानते हैं।

'निरंजन' विशेषण नैयायिकोंके मतका खण्डन करता है।
वे मानते हैं कि— कल्पकाल पूरा होनेपर सारा जगत् शून्य होजाता

है और उससमय सभी जीव मुक्त होजाते हैं, तब सदा शिवको जगत् उत्पन्न करनेकी चिंता होती है और मुक्त हुए सर्व जीवोको कर्मरूपी अजनका सयोग करके उन्हे पुन ससारमे फेंकते है।"

सिद्धोको भावकर्म–द्रव्यकर्म–नोकर्मरूपी अजनका सयोग कभी होता ही नही–ऐसा "निरजन शब्दसे प्रतिपादन करके नैयायिक मतका खडन किया है।

४–आगमार्थ–अनत गुणात्मक सिद्ध परमेष्ठी ससारसे मुक्त हुए हैं–इस सिद्धान्तका अर्थ प्रसिद्ध है।

५–भावार्थ–निरजन ज्ञानमयी परमात्मा द्रव्य आदरणीय है, उपादेय है,–ऐसा भावकथनमे गर्भित है।

(देखो, 'परमात्म प्रकाश' गाथा १ की टीका)

सम्यक् श्रुतज्ञान बिना निश्चय या व्यवहार कोई नय नही हो सकता, इसलिये प्रथम व्यवहार होता है और फिर निश्चय प्रगट होता है–यह मान्यता भ्रममूलक है। जीव स्वाश्रयसे निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट करे तब पूर्वकी सत्–देव–गुरु शास्त्रकी श्रद्धाको (भूत नैगमनयसे) व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

प्रश्न (८७)–क्या व्यवहार सम्यग्दर्शन निश्चय सम्यग्दर्शनका साधक कारण है ?

उत्तर–नही, व्यवहार सम्यग्दर्शन तो विकार है और निश्चय सम्यग्दर्शन तो शुद्ध पर्याय है। विकार वह अविकारका कारण कैसे हो सकता है?–इसलिये व्यवहार सम्यग्दर्शन निश्चय सम्यग्दर्शनका कारण नही हो सकता, किन्तु उसका व्यय (अभाव) होकर निश्चय सम्यग्दर्शनका उत्पाद सुपात्र जीवोके अपने पुरुषार्थसे होता है।

निश्चयनयके आश्रय बिना सच्चा व्यवहारनय होता ही नही। जिसके अभिप्रायमे व्यवहारनयका आश्रय हो उसे तो निश्चयनय रहा ही नही, क्योकि उसका जो व्यवहारनय है वही निश्चयनय होगया।

चारो अनुयोगोमें कभी व्यवहारनयको मुख्य करके कथन किया जाता है और कभी निश्चयनयको मुख्य करके कथन किया जाता है, किन्तु उस प्रत्येक अनुयोगमे कथनका सार एक ही है, और वह यह है कि–निश्चयनय तथा व्यवहारनय दोनो जानने योग्य हैं, किन्तु शुद्धताके लिये आश्रय करने योग्य एक निश्चयनय ही है, व्यवहारनय कभीभी आश्रय करने योग्य नही है—वह सदैव हेय ही है ऐसा जानना।

निश्चयनयका आश्रय करना—उसका अर्थ यह है कि निश्चयनयके विषयभूत आत्माके त्रिकाली चैतन्यस्वरूपका आश्रय करना और व्यवहारनयका आश्रय छोडना–उसे हेय समझना–उसका अर्थ यह है कि व्यवहारनयके विषयरूप विकल्प, परद्रव्य या स्वद्रव्य की अधूरी दशाकी ओर का आश्रय छोडना।

किसी समय निश्चयनय आदरणीय है और कभी व्यवहारनय,–ऐसा मानना वह भूल है। त्रिकाल एक निश्चयनयके आश्रयसे ही धर्म प्रगट होता है—ऐसा समझना।"

—(देखो, स्वा० ट्रस्ट प्र० मोक्षशास्त्र, अंतिम अध्यायके
बाद का परिशिष्ट ३, पृ० ८२२)

प्रश्न (८९)–मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवके धर्म सबधी व्यवहारमें क्या अन्तर है?

उत्तर—१–" मूढ जीव आगम पद्धतिको व्यवहार और अध्यात्म

करता है, परसत्ता और परस्वरूपको अपना कार्य न मानता हुआ योग (मन, वचन और काय) द्वारा अपने स्वरूपमें ध्यान–विचाररूप क्रिया करता है, वह कार्य करनेसे वह मिश्र-व्यवहारी कहलाता है। केवलज्ञानी (जीव) यथाख्यात चारित्र के बल द्वारा शुद्धात्म स्वरूपमें रमणशील है, इसलिये वह शुद्ध व्यवहारी कहलाता है, उसमे योगारूढ दशा विद्यमान है इस-लिये उसे व्यवहारी नाम दिया है। शुद्ध व्यवहारकी मर्यादा तेरहवे गुणस्थानसे लेकर चौदहवे गुणस्थान तक जानना, जैसे—असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहार ।"

"जहाँ तक मिथ्यात्व अवस्था है वहाँ तक अशुद्ध निश्च-यात्मक द्रव्य अशुद्ध व्यवहारी है, सम्यग्दृष्टि होने पर मात्र चतुर्थ गुणस्थानसे लेकर बारहवे गुणस्थान तक मिश्र निश्चया-त्मक जीव द्रव्य मिश्र व्यवहारी है, और केवलज्ञानी शुद्ध निश्चयात्मक शुद्ध व्यवहारी है।"

—श्री परमार्थ वचनिका, अनु० गुज० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ३५२)

(मूल—बनारसी विलास)

प्रश्न (९०)–अध्यात्म शास्त्रोमे व्यवहारको अभूतार्थ–असत्यार्थ कहा है उसका क्या अर्थ समझना ?

उत्तर—१–अध्यात्मशास्त्रोमें निश्चयनयकी अपेक्षासे व्यवहारनयको अभूतार्थ–असत्यार्थ कहा है, किन्तु उसका अर्थ यह नही है कि व्यवहारनय है ही नही और न कोई उसका विषय है अर्थात् सर्वथा कोई वस्तु ही नही है।

२–"यहाँ कोई कहे कि—पर्याय भी द्रव्यके ही भेद है,

" यदि निमित्त नैमित्तिक भावकी दृष्टिसे देखा जाये तो वह व्यवहार कथंचित सत्यार्थ भी कहा जा सकता है। यह सर्वथा असत्यार्थ ही कहा जाये तो सर्व व्यवहारका लोप (अभाव) होजाये और सर्व व्यवहारका लोप होनेसे परमार्थ का भी लोप हो जायेगा। इसलिये जिनदेवका स्याद्वाद रूप उपदेश समझनेसे ही सम्यक्ज्ञान है, सर्वथा एकान्त वह मिथ्यात्व है।" (श्री समयसार गाथा ५८–६० का भावार्थ)

४–"आत्माको परके निमित्तसे जो अनेक भाव होते हैं वे सब व्यवहारनय के विषय होनेसे व्यवहारनय तो पराश्रित है, और जो एक अपना स्वाभाविक भाव है वही निश्चयनयका विषय होनेसे निश्चयनय आत्माश्रित है इसप्रकार निश्चय नयको प्रधान कहकर व्यवहारनयके ही त्यागका उपदेश किया है उसका कारण यह है कि—जो निश्चयके आश्रयसे वर्तते हैं वे ही कर्मसे मुक्त होते हैं और जो एकान्त व्यवहारके ही आश्रयसे वर्तते हैं वे कर्मसे कभी नही छूटते।"

(श्री समयसार गाथा २७२ का भावार्थ)

५–"यह ससारी अवस्था और यह मुक्त अवस्था–ऐसे भेदरूप जो आत्माका निरुपण करते हैं वह भी व्यवहारनयका विषय है। उसका अध्यात्मशास्त्रमें अभूतार्थ–असत्यार्थ नामसे वर्णन किया है। शुद्ध आत्मामें जो सयोगजनित दशा हो वह तो असत्यार्थ ही है, कही शुद्धवस्तुका वैसा स्वभाव नही है, इस लिये वह असत्य ही है।

पुनश्च, निमित्तसे जो अवस्था हुई वह भी आत्मा का ही

—(निश्चयके भान रहित जीवको व्यवहारका उपदेश कार्यकारी नहीं है, क्योकि अज्ञानी व्यवहारको ही निश्चय मान लेते है।

माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य ।
व्यवहार एव हि तथा, निश्चयता यात्यनिश्चयज्ञस्य ॥७॥

अर्थ —जिसप्रकार कोई (सच्चे) सिंहको सर्वथा न जानता हो उसे तो बिलाव ही सिंहरूप है (वह बिलावको ही सिंह मानता है), उसीप्रकार जो निश्चयके स्वरूपको न जानता हो उसके तो व्यवहार ही निश्चयपनेको प्राप्त होता है (वह व्यवहारको ही निश्चय मान लेता है ।)

८–व्यवहारनय म्लेच्छ भाषाके स्थानपर है इसलिये परमार्थका प्रतिपादक (कथन करनेवाला) होनेसे व्यवहार नय स्थापन करने योग्य है, तथा ब्राह्मणको म्लेच्छ नही होना चाहिये—इस वचनसे वह (व्यवहारनय) अनुसरण करने योग्य नही है।

(समयसार गा० ८ की टीका)

प्रश्न (६१)–व्रत, शील, सयमादि तो व्यवहार है या नही ?

उत्तर—१–"कही व्रत, शील, सयमादिकका नाम व्यवहार नही है, किन्तु उन्हे (व्रतादिको) मोक्षमार्ग मानना वह व्यवहार है–यह (मान्यता) छोडदे। पुनश्च, ऐसे श्रद्धानसे उन्हे तो बाह्य सहकारी जानकर, उपचारसे मोक्षमार्ग कहा है किन्तु वे तो पर द्रव्याश्रित हैं और सच्चा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है वह स्वद्रव्याश्रित है। इसप्रकार व्यवहारको असत्यार्थ–हेय समझना।"

—(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ३७३)

२–"निचली दशामें किन्ही जीवोके शुभोपयोग और शुद्धो-

४–"पुनश्च, कोई ऐसा मानता है कि शुभोपयोग है वह शुद्धोपयोगका कारण है। अब, वहाँ जिसप्रकार अशुभोपयोग छूटकर शुभोपयोग होता है उसीप्रकार शुभोपयोग छूटकर शुद्धोपयोग होता है—ऐसा ही यदि कारण–कार्यपना हो तो शुभोपयोगका कारण अशुभोपयोग भी सिद्ध होगा, अथवा द्रव्यलिगीको शुभोपयोग तो उत्कृष्ट होता है जबकि शुद्धोपयोग होता ही नही, **इसलिये वास्तविकरूपसे उन दोनोंमें कारण कार्यपना नहीं है**। जैसे—किसी रोगीको महान रोग था और फिर वह अल्प रह गया, तो वहाँ वह अल्प रोग कही निरोग होनेका कारण नही है, हाँ, इतना अवश्य है कि वह अल्परोग रहनेपर निरोग होनेका उपाय करे तो हो सकता है, लेकिन कोई अल्परोगको ही अच्छा जानकर उसे रखनेका यत्न करे तो निरोग किस प्रकार होगा? उसीप्रकार किसी कषायीको तीव्र कषायरूप अशुभोपयोग था, फिर मद कषायरूप शुभोपयोग हुआ। अब, वह शुभोपयोग कही निष्कषाय शुद्धोपयोग होनेका कारण नही है। हाँ, इतना अवश्य है कि शुभोपयोग होनेपर यदि शुद्धोपयोगका यत्न करे तो हो सकता है, लेकिन कोई उस शुभोपयोगको ही अच्छा मानकर उसीका साधन करता रहे तो शुद्धोपयोग कहाँसे होगा? दूसरे, मिथ्यादृष्टिका शुभोपयोग तो शुद्धोपयोगका कारण है ही नही, किन्तु सम्यग्दृष्टिको शुभोपयोग होनेपर निकट शुद्धोपयोगकी प्राप्ति होती है,—ऐसी मुख्यतासे कही कही शुभोपयोगको भी शुद्धोपयोगका कारण कहते हैं—ऐसा समझना।" (मोक्षमार्ग प्र० गु० २६०-६१ हिंदीमें ३७६-३७७)

५–" व्यवहार तो उपचारका नाम है और वह उप-

व्यवहारनय

६—व्यवहारो द्विविध सद्भूतव्यवहारोऽसद्भूत व्यवहारश्च ।

अर्थ—व्यवहारनय दो प्रकारसे है—१–सद्भूतव्यवहारनय और २–असद्भूत व्यवहारनय ।

७—तत्रैकवस्तुविषय सद्भूतव्यवहार, भिन्नवस्तुविषयोऽसद्भूत व्यवहार । तत्र सद्भूतव्यवहारो द्विविध उपचरितानुपचरितभेदात्।

अर्थ—एक वस्तुको (वृक्ष और डालीकी भाँति भेदरूप) विषय करे वह सद्भूतव्यवहारनय है। भिन्न–भिन्न वस्तुओंको (अभेदरूप-एकरूप) ग्रहण करे वह असद्भूत व्यवहारनय है ।

उसमे सद्भूतव्यवहारनयके दो भेद हैं—१–उपचरित और २—अनुपचरित ।

८—तत्रसोपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषय उपचरितसद्भूतव्यवहारो, यथा जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणा ।

अर्थ–जो नय उपाधि सहित गुण–गुणीके भेदको विषय करे वह उपचरित सद्भूत व्यवहारनय है, जैसेकि–जीवके मतिज्ञानादि गुण कहना ।

९—निरुपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयोऽनुपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणा ।

अर्थ—जो नय उपाधिरहित गुण-गुणीके भेदको विषय करे उसे अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं, जैसेकि–जीवके केवलज्ञानादि गुण, (परमाणुके स्पर्शादिगुण)

१०–असद्भूतव्यवहारो, द्विविध उपचरितानुपचरितभेदात् ।

क्योंकि परभावको अपना कहनेसे आत्माको क्या साध्य (लाभ) है ? (कुछ नही ।)

२–जीवको परका कर्ता–भोक्ता माना जाये तो भ्रम होता है। व्यवहारसेभी जीवपरका कर्ता–भोक्ता नही है। व्यवहारसे आत्मा (जीव) रागका कर्ता भोक्ता है, क्योंकि राग वह अपनी पर्यायका भाव है इसलिये उसमे तद्गुणसंविज्ञान लक्षण लागू होता है। जो उससे विरुद्ध कहे वह नयाभास (मिथ्या-नय) है ।

प्रथम नयाभास

(१) जीवको वर्णादि युक्त मानना ।

(पचाध्यायी भाग १ गाथा ५६३)

(२) मनुष्यादि शरीर है वे ही जीव है–ऐसा मानना ।

(गाथा ५६७–६८)

(३) मनुष्य शरीर जीवके साथ एक क्षेत्रावगाहरूपसे है, इस-लिये एक है–ऐसा मानना । (गाथा ५६९)

(४) शरीर और आत्माको वध्य–वधक भाव मानना ।

(गाथा ५७०)

(५) शरीर और आत्माको निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध प्रयो-जनवान नही है, क्योकि–स्वय और स्वत परिणमित होनेवाली वस्तुको परके निमित्तसे क्या लाभ ? (कोई लाभ नही ।) (गाथा ५७१)

दूसरा नयाभास

१–जीव और जड कर्म भिन्न-भिन्न द्रव्य होनेसे तथा उनके पर-

[जीवका व्यवहार पर पदार्थमें नही होता, किन्तु अपने में ही होता है। जीवका परद्रव्यके साथ सम्बन्ध बतलानेवाले सभी कथन अध्यात्म दृष्टिसे नयाभास हैं।]

चौथे नयाभासका स्वरूप

१–ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्धके कारण ज्ञानको ज्ञेयगत कहना, तथा ज्ञेयको ज्ञानगत कहना भी नयाभास है। (गाथा ५८५)

निक्षेप

प्रश्न (६४)–निक्षेप किसे कहते हैं।

उत्तर—१–युक्ति द्वारा (नय–प्रमाणज्ञान द्वारा) सुयुक्त मार्ग प्राप्त होनेपर कार्य वशात् नाम, स्थापना, द्रव्य (योग्यतारूप शक्ति) और भावमें पदार्थके स्थापनको निक्षेप कहते हैं।

(जैन सिद्धान्त प्रवेशिका)

२–प्रमाण और नयके अनुसार प्रचलित हुए लोक व्यवहारको निक्षेप कहते हैं। ज्ञेय, पदार्थ अखण्ड है, तथापि उसे जानते हुये उसके जो भेद (अग-पक्ष) किये जाते हैं उसे निक्षेप कहते है।

(मोक्षशास्त्र अ० १ सूत्र ५ की टीका)

[निक्षेप, नयका विषय है। नय, निक्षेपका विषय करनेवाला (विषय है)]

प्रश्न (६५)–नामनिक्षेप किसे कहते हैं ?

उत्तर—गुण, जाति, द्रव्य और क्रियाकी अपेक्षा रहित मात्र इच्छानुसार किसीका नाम रखना सो नाम निक्षेप है। जैसे–किसी का नाम "जिनदत्त" रखा, चूंकि वह जिनदेवका दिया हुआ नही है तथापि ,लोक व्यवहार (पहिचानने) के लिये उसका नाम "जिनदत्त" रखा गया है।

प्रश्न (१६)—स्थापना [illegible]

उत्तर—अनुपस्थित (उपस्थित व [illegible]
उपस्थित वस्तुमें सम्बन्धकी
ऐसा कि—"यह वही है"—ऐसा [illegible]
है अन्य पदार्थमें उस स्थापना [illegible]
अन्य पदार्थमें अन्य पदार्थकी स्थापना
नाथकी प्रतिमाको पार्श्वनाथ [illegible] कहना।

स्थापना निक्षेपके दो प्रकार हैं—(
और (२) अतदाकार स्थापना।

जिस पदार्थका जैसा आकार हो वैसा
में करना वह "तदाकार स्थापना" है। और
किया गया हो वह "अतदाकार स्थापना" है।
स्थापना निक्षेपका कारण नहीं समझना [illegible]
मनोभावना ही उसका कारण है।

[नामनिक्षेप और स्थापना निक्षेपमें यह अंतर है
नाम निक्षेपमें पूज्य-अपूज्यका व्यवहार नहीं होता,
स्थापना निक्षेपमें पूज्य-अपूज्यका व्यवहार होता है

प्रश्न (१७)—द्रव्यनिक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर—भूतकालमें प्राप्त हुई अवस्थाको अथवा [illegible] प्राप्त हो
होनेवाली अवस्थाको वर्तमानमें कहना वह द्रव्य निक्षेप है।
श्रेणिकराजा भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं उन्हें
तीर्थंकर कहना और महावीर [illegible] भूतकालके
तीर्थंकरोंको वर्तमान तीर्थंकर मानकर उनकी स्तुति
वह द्रव्य निक्षेप है।

प्रश्न (६८)–भावनिक्षेप किसे कहते हैं ?

उत्तर—केवल वर्तमान पर्यायकी मुख्यतासे अर्थात् जो पदार्थ वर्तमान दशामे जिस रूप है उसे उस रूप व्यवहार करना वह भाव निक्षेप है। जैसेकि–श्री सीमधर भगवान वर्तमान तीर्थंकर के पदपर महा विदेह क्षेत्रमें विराजमान हैं उन्हे तीर्थंकर कहना, और महावीर भगवान जो वर्तमानमे सिद्ध है उन्हे सिद्ध कहना वह भाव निक्षेप है।

[नाम, स्थापना और द्रव्य–यह तीन निक्षेप द्रव्यको विषय करते हैं, इसलिये वे द्रव्यार्थिक नयके आधीन हैं, और भाव निक्षेप पर्यायको विषय करता है इसलिये वह पर्यायार्थिक नयके आधीन है। (आलाप पद्धति)

प्रश्न (६६)–नैगमनय और द्रव्य निक्षेपमें क्या अन्तर है ?

उत्तर–यद्यपि नैगमनय और द्रव्यनिक्षेपके विषय समान मालूम होते हैं, तथापि वे एक नही हैं। नैगमनय ज्ञानका भेद हैं, इसलिये वह विषयी (जाननेवाला) है, और द्रव्यनिक्षेप पदार्थोंकी अवस्थारूप है, इसलिये वह विषय (जानने योग्य–ज्ञेय) है। तात्पर्य यह है कि उनमें ज्ञायक–ज्ञेय या विषयी–विषयका सम्बन्ध है। इसीलिये दोनो एक नही हैं।" –(आलाप पद्धति-पृ० ११८)

प्रश्न (१००)–ऋजुसूत्रनय और भावनिक्षेपमे क्या अन्तर है ?

उत्तर—"भावनिक्षेप द्रव्यकी वर्तमान पर्यायमात्रको ग्रहण करता है। यद्यपि उसका विषय भी ऋजुसूत्रनयके साथ मिलता है, तथापि वह एक नही है। ऋजुसूत्रनय प्रमाणका अश होनेसे वह विषयी है और भावनिक्षेप पदार्थका पर्यायस्वरूप होनेसे विषय स्वरूप है। इसीलिये दोनो भिन्न भिन्न हैं।" (आलापपद्धति, पृ० ११६)

अनेकांत और स्याद्वाद

प्रश्न (१०१)—अनेकांत किसे कहते हैं ?

उत्तर—१–प्रत्येक वस्तुमें वस्तुपनेकी सिद्धि करनेवाली अादि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियोंका एकही साथ होना–उसे अनेकांत कहते हैं।

आत्मा सदा स्व-रूपसे है और पर–रूपसे नहीं जो दृष्टि वही सच्ची अनेकान्त दृष्टि है।

२– सत्–असत्, नित्य–अनित्य एक–अनेक इत्यादि [illegible] एकान्त का निराकरण (नकार) वह अनेकांत है।

—(आप्तमीमांसा का० १०१ की टीका)

प्रश्न (१ २)—अनेकान्त स्वरूप किसप्रकार सिद्ध होता है ?

उत्तर—पदार्थ अनेक धर्मवान है क्योंकि उसमें नित्यादि स्वरूपका अभाव है। यहाँ अनेकांत रूपपनेसे विरुद्ध स्वरूपका अभाव वस्तुके अनेकांत स्वरूपको ही सिद्ध करता है।

(परीक्षामुख अध्याय ३ सूत्र ८२ टीका)

प्रश्न (१ ३)—दो विरुद्ध धर्मों सहित वस्तु सत्यार्थ होती है ?

उत्तर—"हां वस्तु है वह सत्–असत् ऐसे दोनों रूप है इसलिये जो वाणी वस्तुको सत् ही कहती है वह सत्य कैसे होगी ?—नहीं हो सकती ।–यहाँ ऐसा समझना कि वस्तु है वह तो प्रत्यक्षादि प्रमाणके विषयरूप सत् असत् (अस्ति–नास्ति) आदि विरुद्ध धर्म

के आधाररूप है, वह अविरुद्ध (यथार्थ) है। अन्य मतवादी (वस्तुको) सत्‌रूप ही या असत्‌रूप ही है—इसप्रकार एकान्त कहते हैं तो कहो, वस्तु तो वैसी नही है। वस्तु ही स्वय अपना स्वरूप अनेकान्त स्वरूप वतलाती है तो हम क्या करे ! वादी पुकारते हैं—"विरुद्ध है रे विरुद्ध है रे।" तो पुकारो, कही निरर्थक पुकार मे साध्य नही है "

—(देखो, आप्तमीमासा गाथा ११० की टीका)

प्रश्न (१०४)–अनेकान्त और एकान्तका निरुक्ति अर्थ क्या है ? उन दोनोके कितने–कितने भेद है ?

उत्तर—अनेकान्त = अनेक + अत—अनेक धर्म।

एकान्त = एक + अत—एक धर्म।

अनेकान्तके दो भेद हैं—१ सम्यक् अनेकान्त, और २–मिथ्या अनेकान्त।

एकान्तके दो भेद है—१–सम्यक् एकान्त और २–मिथ्या एकान्त।

सम्यक् अनेकान्त वह प्रमाण है और मिथ्या अनेकात वह प्रमाणाभास है।

सम्यक् एकान्त वह नय है और मिथ्या एकान्त वह नयाभास है।

प्रश्न (१०५)–सम्यक् अनेकात और मिथ्या अनेकातका स्वरूप क्या है।

उत्तर—सम्यक् अनेकान्त—प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम प्रमाणमे अविरुद्ध एक वस्तुमें जो अनेक धर्म हैं, उनका निरूपण करनेमे तत्पर है वह सम्यक् अनेकान्त है। प्रत्येक वस्तु अपनेरूप है और

परस्य नहीं है। आत्मा स्व-स्वरूप है
पर उसके अपने स्वरूप है और
प्रकार जानना वह सम्यक् अनेकान्त है।

मिथ्या अनेकान्त:—वस्तु स्वरूप
कल्पना की जावे वह मिथ्या अनेकान्त है।
सकता है और दूसरे जीवका भी कर सकता
अपनेसे तथा परसे—दोनोंसे आत्मा हुआ
अनेकान्त है।

(स्वा० ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित मोक्षशास्त्र अ० १ सूत्र ६

प्रश्न (१०६)—सम्यक् अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्तके
दीजिये।

उत्तर—१—आत्माअपने रूप है और पररूप नहीं है—ऐसा जानना
वह सम्यक् (सच्चा) अनेकान्त है।

आत्मा अपने रूप है और पर रूप भी है—ऐसा जानना
वह मिथ्या अनेकान्त है।

२—आत्मा अपना कर सकता है और शरीरादि परवस्तुओंका कुछ
नहीं कर सकता—ऐसा जानना वह सम्यक् अनेकान्त है।

आत्मा अपना कर सकता है और शरीरादि परका भी
कर सकता है—ऐसा जानना वह मिथ्या अनेकान्त है।

३—आत्माको शुद्धभावसे धर्म होता है और शुभभाव से धर्म नहीं
होता—ऐसा जानना वह सम्यक् अनेकान्त है आत्माको शुद्ध-
भावसे धर्म होता है और शुभभावसे भी धर्म होता है—ऐसा
जानना वह मिथ्या अनेकान्त है।

४—निश्चयके आश्रयसे धर्म होता है और व्यवहारके आश्रयसे धर्म

नही होता—ऐसा जानना वह सम्यक्–अनेकान्त है ।

निश्चयके आश्रयसे धर्म होता है और व्यवहारके आश्रय से भी धर्म होता है—ऐसा समझना वह मिथ्या अनेकान्त है ।

५–व्यवहारका अभाव होनेपर निश्चय प्रगट होता है–ऐसा जानना वह सम्यक् अनेकान्त है ।

व्यवहार करते-करते निश्चय प्रगट होता है—ऐसा जानना वह मिथ्या अनेकान्त है ।

६–आत्माको अपनी शुद्ध क्रियासे लाभ होता है और शरीरकी क्रियासे लाभ या हानि नही होते—ऐसा समझना वह सम्यक् अनेकान्त है ।

आत्माको अपनी शुद्धक्रियासे लाभ होता है और शरीर की क्रियासेभी लाभ होता है–ऐसा जानना वह मिथ्या अनेकात है ।

७–एक वस्तुमे परस्पर विरोधी दो शक्तियाँ (सत्–असत्, तत्–अतत्, नित्य–अनित्य, एक-अनेक, आदि) प्रकाशित होकर वस्तु को सिद्ध करें वह सम्यक् अनेकान्त है ।

एक वस्तुमें दूसरी वस्तुकी शक्ति प्रकाशित होकर एक वस्तु दो वस्तुओका कार्य करती है–ऐसा मानना वह मिथ्या अनेकान्त है, अथवा तो सम्यक् अनेकान्तसे वस्तुका जो स्वरूप निश्चित् है उससे विपरीत वस्तु स्वरूपकी मात्र कल्पना करके उसमे न हो ऐसे स्वभावोकी कल्पना करना वह मिथ्या अनेकात है।

८–जीव अपने भाव कर सकता है और पर वस्तुका कुछ नही कर सकता–ऐसा जानना वह सम्यक् अनेकान्त है ।

जीव सूक्ष्म पुद्गलोका कुछ नही कर सकता किन्तु स्थूल

पुद्गलोंका कर सकता

(मोक्षशास्त्र

प्रश्न (१०७)—सम्यक् एकान्त और

उत्तर—सम्यक् एकान्त—अपने स्वरूपसे
नास्तित्व–आदि जो वस्तु स्वरूप है
प्रमाण द्वारा जाने हुए पदार्थके एक देशका
करनेवाला नय वह सम्यक् एकान्त है।
किसी वस्तुके एक धर्मका निश्चय करके
वाले अन्य धर्मोंका निषेध करना वह मिथ्या

प्रश्न (१ ८)—सम्यक एकान्त और मिथ्या

उत्तर—१–'सिद्ध भगवान एकान्त सुखी हैं'—ऐसा जानना
सम्यक एकान्त है क्योंकि 'सिद्ध जीवोंको किंचित् भी दुःख नहीं
है'—ऐसा गर्भितरूपसे उसमें आ जाता है।
सर्व जीव एकान्त सुखी हैं—ऐसा जानना वह
एकान्त है क्योंकि अज्ञानी जीव वर्तमान दुःखी
अस्वीकार होता है।

२–'सम्यग्ज्ञान वह धर्म है'—ऐसा जानना वह सम्यक्-एकान्त
क्योंकि सम्यग्ज्ञान पूर्वक वैराग्य होता है—ऐसा उसमें गर्भित
रूपसे आ जाता है।
त्याग ही धर्म है—ऐसा जानना वह मिथ्या एकान्त है
क्योंकि 'त्यागके साथ सम्यग्ज्ञान होना ही चाहिये'—ऐसा उसमें
नहीं आता।—(देखो मोक्षशास्त्र अ० १ सूत्र ६ की टीका)

प्रश्न (१ ९)—स्याद्वाद किसे कहते हैं?

उत्तर—१–वस्तुके अनेकात स्वरूपको समझानेवाली कथनपद्धतिको स्यादवाद कहते हैं।

[स्यात्=कथंचित्, किसीप्रकारसे, किसी सम्यक् अपेक्षा से, वाद=कथन।]

स्याद्वाद अनेकान्तका द्योतक है (बतलानेवाला है) अनेकात और स्याद्वादको द्योत्य–द्योतक सम्बन्ध है।

२–" ऐसा जो अनन्त धर्मोवाला द्रव्य उसके एक–एक धर्मका आश्रय करके विवक्षित–अविवक्षितके विधि–निषेध द्वारा प्रगट होनेवाली **सप्तभङ्गी** सतत् सम्यक् प्रकारसे उच्चारण किये जाने वाले '**स्यात्' काररूपी** अमोघ मत्रपद द्वारा, 'ज' कारमे भरे हुए सर्व विरोध विषके मोहको दूर करती है।"

—(श्री प्रवचनसार गाथा ११५ की टीका)

३–"विवक्षित (जिसका कथन करना है) धर्मको मुख्य करके उसका प्रतिपादन करनेसे और अविवक्षित (जिसका कथन नही करना है) धर्मको गौण करके उसका निषेध करनेसे सप्तभंगी प्रगट होती है।

स्याद्वादमें अनेकातको सूचित करते हुए "स्यात्" शब्द का सम्यक्रूपसे उपयोग होता है। "स्यात्" पद एकातवादमे भरे हुए समस्त विरोधरूपी विषके भ्रमको नष्ट करनेमे रामबाण मन्त्र हैं।

अनेकात वस्तु स्वभावका लक्ष चूके बिना, जिस अपेक्षा से वस्तुका कथन चल रहा हो उस अपेक्षासे, उसका निर्णीतपना–नियमबद्धपना–निरपवादपना बतलानेके लिये जिस 'ज' शब्दका उपयोग किया जाता है उसका यहाँ निषेध नही

समझना।" —[श्री

४– 'पदार्थोंमें अनन्त धर्म हैं और वे
में होते हैं कोई आगे-पीछे नहीं
बार एक ही धर्मका कथन हो सकता है
नहीं हो सकता इसकारण
'कथंचित्' न लगाया जावे तो
जित धर्म ही समझा जा सकेगा
हो जायगा—ऐसी दशामें पदार्थका पूर्ण
जायेगा या अधूरा ही समझमें आयेगा, किन्तु
ऐसे नहीं है इसलिये ए सा कथन एकान्त वाद है
ए से एकान्त कथनको मिथ्या एकान्त कहते हैं।"

[आलाप पद्धति (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ [illegible]]

५– 'आप्तमीमांसाकी १११ वी कारिकाके व्याख्यानमें श्री
देव कहते हैं कि—वचनका ए सा स्वभाव है कि वह
अस्तित्व दिखलाने पर वह उससे अन्यका (परवस्तुका) निरा-
करण करता है इसलिये अस्तित्व और नास्तित्व इन दो मूल
धर्मोंके आश्रयसे सप्तभंगीरूप स्याद्वादकी सिद्धि होती है।"

(तत्त्वार्थसार पृ० १२१–फुटनोट)

प्रश्न (११०)—जीवद्रव्यको 'सप्तभंगी' में उतारकर समझाइये।

उत्तर—पहला भंग—'स्यात् अस्ति।

जीव' स्यात् अस्ति एव। जीव स्वरूपकी अपेक्षासे ही (अर्थात् जीव अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे ही) है। इस कथनमें 'जीव स्वरूपकी अपेक्षासे है —यह बात मुख्यरूपसे है और 'जीव पररूपकी अपेक्षासे नहीं है"—यह बात गौणरूपसे उसमें गर्भित है।

—ऐसा जो जाने उसीने जीवके 'स्यात् अस्ति' भगको यथार्थ जाना है, किन्तु यदि "जीव पर की (अजीव स्वरूपसे) अपेक्षासे नही है"—ऐसा उसके लक्षमे गर्भितरूप से न आये तो वह जीवका "स्याद् अस्ति स्वरूप"—जीवका सम्पूर्ण स्वरूप नही समझा है, और इसलिये वह दूसरे छह भग भी नही समझा है।

दूसरा भंग—'स्यात् नास्ति।'

जीव स्यात् नास्ति एव। जीव पर रूपकी अपेक्षा से (अर्थात् जीव पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे) नही ही है।

इस कथनमे "जीव पररूपकी अपेक्षासे नही है"-यह बात मुख्यरूपसे है और "जीव स्वरूपकी अपेक्षासे है"—यह बात गौणरूपसे उसमें गर्भित है।

जीव और पर एक-दूसरेके प्रति अवस्तु हैं-ऐसा "स्यात् नास्ति" पद सूचित करता है।—इसप्रकार दोनो भग स्व-पर की अपेक्षासे विधि-निषेधरूप जीवके ही धर्म हैं।

तीसरा भंगः—"स्यात् अस्ति-नास्ति।"

जीवः स्याद् अस्ति नास्ति एव—जीव स्वरूपकी अपेक्षा से है और पररूपकी अपेक्षा से है ही नही। जीवमे विधि-निषेधरूप दोनो धर्म एक ही साथ होने पर भी वे वचन द्वारा क्रमसे कहे जाते हैं।

चौथा भंग—"स्यात् अवक्तव्य।"

जीव स्याद् अवक्तव्यम् एव। जीव स्वरूप-पररूपके युगपद्पनेकी अपेक्षासे अवक्तव्य ही है।

इसलिये यह भग अस्ति-नास्ति अवक्तव्य कहलाता है।

[स्याद्वाद समस्त वस्तुओके स्वरूपको साधनेवाला अर्हंत् सर्वज्ञका अस्खलित शासन है। वह ऐसा उपदेश देता है कि सब अनेकान्तात्मक है। वह वस्तुके स्वरूपका यथार्थ निर्णय कराता है। वह सशयवाद नही है। कुछ लोग कहते है कि स्याद्वाद वस्तुका नित्य तथा अनित्यादि दो प्रकारसे दोनो पक्षोसे कथन करता है, इसलिये सशयका कारण है, किन्तु वह मिथ्या है। **अनेकान्तमें तो दोनों पक्ष निश्चित हैं इसलिये वह संशयका कारण नहीं है।**]

—(देखो, श्री प्रवचनसार गा० ११५ की टीका,
मोक्षशास्त्र (प्रकाशक स्वा० म०) अ०
४ का उपसहार पृ० ३७१-७६,
तथा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गा०
३११-१२ का भावार्थ)

प्रश्न (१११)-सिद्ध भगवानको किसी अपेक्षासे सुखका प्रगटपना तथा किसी अपेक्षासे दुखका प्रगटपना मानना—वह अनेकान्त सिद्धान्तानुसार ठीक है ?

उत्तर—नही, क्योकि वास्तवमे गुण और पर्याय—इन दोनोमें गौण और मुख्य व्यवस्थाकी अपेक्षासे ही अनेकान्त प्रमाण माना गया है, सुख और दुख दोनो पर्याय हैं इसलिये पर्यायरूपसे उनका (सुख-दुखका) द्वैत भगवानके नही बन सकता। भगवानको पर्यायमें दुख है ही नही। जो कुछ हो उसी मे अनेकान्त लागू हो सकता है।

(देखो, पचाध्यायी भा० २, गाथा ३३३ से ३५)

प्रश्न (११२)—पर्यायोंमें [illegible]
अनेकान्त सिद्धान्तके अनुसार [illegible] है
उत्तर—नहीं पर्यायें [illegible]
यह अनेकान्त है। 'पंचाध्यायी' (
अनुसार गुण अक्रम हैं और पर्यायें [illegible]
प्रश्न (११३)—अनेकान्त क्या बतलाता है? [illegible]
उत्तर—१—अनेकान्त वस्तुको परसे [illegible]
की स्वतन्त्र सत्ता यह अनेकान्तके [illegible]
पृथक्त्व यह वस्तुका स्वभाव है।
२—अनेकान्त वस्तुको—"स्वरूपसे है और पररूपसे
है"—ऐसा बतलाता है। आत्मा पररूपसे नहीं है,
पर वस्तुका कुछ भी करनेमें असमर्थ है और पर वस्तु व है
तो उसका आत्माको कुछ भी नहीं है।
तू अपने रूप है तो पररूप नहीं है और परवस्तु अनु-
कूल हो या प्रतिकूल—उसे बदलनेमें तू समर्थ नहीं है। [illegible]
इतना निर्णय कर तो श्रद्धा ज्ञान और शांति तेरे पास ही है।
३—अनेकान्त वस्तुको स्व—रूपसे सत् बतलाता है।
सत्को सामग्रीकी आवश्यकता नहीं है संयोगकी [illegible]
नहीं है किन्तु सत्को सत्के निर्णयकी आवश्यकता है [illegible]
सत्‌रूप हूँ पररूप नहीं हूँ।
४—अनेकान्त वस्तुको एक—अनेक स्वरूप बतलाता है।
'एक' कहते ही 'अनेक' की अपेक्षा आ जाती है। तू अपनेमें एक
है और अपनेमें ही अनेक है। अपने गुण—पर्यायोंसे [illegible] है
वस्तुसे एक है।

५–अनेकान्त वस्तुको नित्य–अनित्य स्वरूप बतलाता है। स्वय नित्य है और स्वय ही पर्यायसे अनित्य है, उसमें जिस ओर की रुचि उस ओर का परिवर्तन (परिणाम) होता है। नित्य वस्तुकी रुचि करे तो नित्य स्थायी ऐसी वीतरागता हो और अनित्य पर्यायकी रुचि करे तो क्षणिक राग–द्वेष होते हैं।

६–अनेकान्त प्रत्येक वस्तुकी स्वतन्त्रता घोषित करता है। वस्तु स्वसे है और परसे नही है–ऐसा कहा उसमे 'स्व अपेक्षासे प्रत्येक वस्तु परिपूर्ण ही है'–यह आजाता है। वस्तु को परकी आवश्यकता नही है, अपनेसे ही स्वय स्वाधीन परिपूर्ण है।

७–अनेकान्त प्रत्येक वस्तुमे अस्ति–नास्ति आदि दो विरुद्ध शक्तियाँ बतलाता है। एक वस्तुमे वस्तुपनेका निश्चल निर्णय उत्पन्न करनेवाली (–सिद्ध करनेवाली) दो विरुद्ध शक्तियाँ होकरही तत्त्वकी पूर्णता है,–ऐसी दो विरुद्ध शक्तियो का होना वह वस्तुका स्वभाव है।"

(मोक्षशास्त्र पृ० ३८३–८४ अ० ४ उपसहार)

प्रश्न (११४)–साधक जीवको अस्ति–नास्तिके ज्ञानसे क्या लाभ होता है।

उत्तर—"जीव स्व–रूपसे है और पररूप से नही है"–ऐसी अनादि वस्तु स्थिति होने परभी, जीव अनादि अविद्याके कारणसे शरीरको अपना मानता है और इसलिये शरीर उत्पन्न होने पर स्वय उत्पन्न हुआ, तथा शरीरका नाश होनेपर स्वयका

है और निमित्त वह नैमित्तिकसे पर है, इसलिये एक–दूसरेका कुछ नही कर सकते। नैमित्तिकके ज्ञानमे निमित्त परज्ञेयरूप से ज्ञात होता है।"

—(मोक्षशास्त्र गुज० अध्याय ४ का उपसहार)

प्रश्न (११५)–अर्पित और अनर्पित कथन द्वारा अनेकान्त स्वरूप किसप्रकार समझमे आता है ?

उत्तर—अर्पितानर्पित सिद्धे ।—(तत्त्वार्थसूत्र, अ० ५, सूत्र–३२)

१–"प्रत्येक वस्तु अनेकान्त स्वरूप है। यह सिद्धान्त इस सूत्रमें स्याद्वाद द्वारा कहा है। नित्यता और अनित्यता परस्पर विरुद्ध दो धर्म होनेपर भी वे वस्तुको सिद्ध करनेवाले है, इसलिये वे प्रत्येक द्रव्यमे होते ही है। उनका कथन मुख्य गौणरूपसे होता है, क्योकि सभी धर्म एक साथ नही कहे जा सकते। जिस समय जो धर्म सिद्ध करना हो उस समय उसकी मुख्यता ली जाती है। उस मुख्यता–प्रधानताको "अर्पित" कहा जाता है और उस समय जो धर्म गौण रखे हो उन्हे "अनर्पित" कहा जाता है। अनर्पित रखे हुए धर्म उस समय कहे नही गये है, तथापि वस्तुमें वे धर्म विद्यमान हैं–ऐसा ज्ञानी जानते हैं।

२–जिससमय द्रव्यकी अपेक्षासे द्रव्यको नित्य कहा, उसी समय वह पर्यायकी अपेक्षासे अनित्य है। मात्र उससमय "अनित्यता" नही कही किन्तु गर्भित रखी है और जब पर्यायकी अपेक्षासे द्रव्यको अनित्य कहा, उसीसमय वह द्रव्यकी अपेक्षा से नित्य है, मात्र उस समय "नित्यता" कही नही है (गर्भित रखी है), क्योकि दोनो धर्म एक साथ नही कहे जा सकते।

(भिन्न) धर्म रहते हैं। वक्ता जिस धर्मका कथन करनेकी इच्छा करता है उसे अर्पित विवक्षित कहते हैं, और वक्ता उस समय जिस धर्मका कथन नही करना चाहता वह अनर्पित–अविवक्षित है, जैसेकि—वक्ता यदि द्रव्यार्थिकनयसे वस्तुका प्रतिपादन करेगा तो "नित्यता" विवक्षित कहलायेगी, और यदि वह पर्यायार्थिकनयसे प्रतिपादन करेगा तो "अनित्यता" विवक्षित है। जिस समय किसी पदार्थको द्रव्यकी अपेक्षासे "नित्य" कहा जा रहा है उससमय वह पदार्थ पर्यायकी अपेक्षा से अनित्य भी है। पिता, पुत्र, मामा, भानजा आदिकी भाँति एक ही पदार्थमे अनेक धर्म रहनेपर भी विरोध नही आता।"

[तत्त्वार्थ सूत्र (हिन्दी अनुवाद प० पन्नालालजी)
अध्याय ५, सूत्र ३२ का अर्थ]

प्रश्न (११७)–"आत्मा स्वचतुष्टयसे है और पर चतुष्टयसे नही है"–ऐसे अनेकान्त सिद्धान्तसे क्या समझना ?

उत्तर—१–कोई आत्मा या उसकी पर्याय परका कुछ कर नही सकते, करा नही सकते,—असर, प्रभाव, प्रेरणा, मदद–सहायता, लाभ, हानि आदि कुछ भी नही कर सकते, क्योकि प्रत्येक वस्तु पर वस्तुकी अपेक्षासे अवस्तु है, अर्थात् वह अद्रव्य, अक्षेत्र, अकाल और अभावरूप है। प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय दूसरे द्रव्यकी पर्यायके प्रति निमित्त रूप होती है, किन्तु उससे वह परद्रव्य की पर्यायको प्रभावित नही कर सकती। परद्रव्यका असर किसीमे नही है।

२–यह सिद्धान्त छहो द्रव्योको लागू होता है। एक परमाणु भी दूसरे पुद्गलोका—पुद्गलकी पर्यायोका या शेष

प्रकरण दसवाँ

मोक्षमार्ग अधिकार

प्रश्न (११९)–(१) काललब्धि, (२) भवितव्य (नियति), (३) कर्मके उपशमादि, (४) पुरुषार्थ पूर्वक उद्यम–इनमेंसे किस कारण द्वारा मोक्षका उपाय बनता है ?

उत्तर—१–मोक्षके प्रयत्नमें पाँच बातें एक साथ होती हैं, अर्थात् जीव जब अपने **ज्ञायक १** स्वभावसन्मुख होकर **पुरुषार्थ २** करता है तब **३ काललब्धि, ४ भवितव्य** और **५ कर्म की उपशमादि** अवस्था—यह पांचो बाते धर्म करनेवालेको एक ही साथ होती हैं। इसलिये उसके पांच समवाय (मिलाप, एकत्रपना) कहते हैं।

२–श्री समयसार नाटक–सर्व विशुद्धिद्वार (पृ० ३३५) में कहा कि–इन पांचको सर्वांगी मानना वह शिवमार्ग है, और किसी एकको ही मानना वह पक्षपात होनेसे मिथ्या-मार्ग है।

प्रश्न (१२०)–काललब्धि क्या है ?

उत्तर—वह कोई वस्तु नही है, किन्तु जिस कालमें कार्य बने वही काललब्धि हैं।

—(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ४५६)

प्रश्न (१२१)–काललब्धि किस द्रव्यमें होती है ?

तर—यह मान्यता मिथ्या है, क्योकि ऐसा माननेवाले जीवने अपना ज्ञायक स्वभाव, पुरुपार्थ आदि पांच समवायोको एक ही साथ नही माना परन्तु एक कालको ही माना, इसलिये उस मान्यतावालेको एकान्त कालवादी गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा है।
(गोम्मटसार कर्मकाड गा० ८७९)

श्न (१२३)–जगतमे सब भवितव्य (नियति) आधीन है, इसलिये जब धर्म होना होगा तब होगा,—यह मान्यता बराबर है ?

उत्तर—नही, क्योकि वैसा माननेवाले जीवने अपना ज्ञायक–स्वभाव, पुरुषार्थ आदि पाँच समवायोको एक ही साथ नही माना किंतु अकेले भवितव्यको ही माना, इसलिये वैसी मान्यतावालेको शास्त्रमें एकान्त मियतिवादी गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा है।
—(गोम्मटसार कर्मकाड, गाथा ८८२)

प्रश्न (१२४)–पाँचो समवायमें द्रव्य–गुण–पर्याय कौन–कौन हैं ?

उत्तर—सामान्य ज्ञायकस्वभाव वह द्रव्य और शेष चार पर्याय है।

प्रश्न (१२५)–जहाँ तक दर्शनमोहकर्म मार्ग न दे वहाँ तक सम्यग्दर्शन नही होता—यह मान्यता बराबर है ?

उत्तर—नही, यह मान्यता मिथ्या है, क्योकि उस जीवने पुरुषार्थ द्वारा ज्ञायक स्वभावी आत्माके सन्मुख होकर एक साथ पाँच समवाय नही माने हैं, वह तो मात्र कर्मकी उपशमादि अवस्था को ही मानता है। इसलिये ऐसे विपरीत मान्यतावाले जीवको एकान्त कर्मवादी (दैववादी) गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा है।
—(गोम्मटसार कर्मकाड, गाथा ८९१)

प्रश्न (१२६)–तो फिर मोक्षके उपायके लिये क्या करना चाहिये ?

सकती। पुनश्च, तपश्चरणादि व्यवहार साधनमे अनुरागी होकर प्रवर्तनका फल तो शास्त्रमें शुभ बन्ध कहा है और द्रव्यलिंगी मुनि 'व्यवहार साधनसे धर्म होगा'—ऐसा मानकर उसमें अनुरागी होता है और उससे मोक्षकी कामना करता है तो वह कैसे हो सकता है ?

व्यवहार साधन करते–करते निश्चय धर्म हो जायेगा—ऐसा मानना तो एक भ्रम है।

प्रश्न (११८)—हजारो शास्त्रोका अभ्यास करे, व्रतादिका पालन करे तथापि द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टिको स्व-परके स्वरूपका यथार्थ निर्णय क्यो नही होता ?

उत्तर—१—वह जीव अपने ज्ञानमेंसे कारण विपरीतता, स्वरूप–विपरीतता और भेदाभेद विपरीतताको दूर नही करता, इसलिये उसे स्व–परके स्वरूपका सच्चा निर्णय नही होता।

२—तत्त्वज्ञानका अभाव होनेसे उसके शास्त्रज्ञानको अज्ञान कहते हैं।

३—अपना प्रयोजन नही साधता इसलिये उसीको कुज्ञान कहते हैं।

४—प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वोका यथार्थ निर्णय करने में वह ज्ञानयुक्त नही होता यही ज्ञानमें दोष हुआ। इसलिये उसी ज्ञानको मिथ्याज्ञान कहा है।

(देहली से प्र० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० १२७)

प्रश्न (११९)—कारणविपरीतता किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसे वह जानता है उसके मूल कारणको तो न पहिचाने और अन्यथा कारण माने वह कारणविपरीतता है।

उत्तर—द्रव्यलिंगी मुनि—विषय सुखादिके फल नरकादि हैं, शरीर अशुचिमय है, विनाशीक है, पोषण करने योग्य नही है, तथा कुटुम्बादिक स्वार्थके सगे है—इत्यादि **परद्रव्यों के** दोष विचार कर उनका त्याग करता है, तथा व्रतादिका फल स्वर्ग—मोक्ष है, तपश्चरणादि पवित्र फलके देनेवाले हैं, उनके द्वारा शरीर शोषण करना योग्य है, तथा देव—गुरु—शास्त्रादि हितकारी हैं—इत्यादि **परद्रव्योंके गुण विचारकर** उन्हीको अगीकार करता है।

—इत्यादि प्रकारसे किन्ही **परद्रव्योंको बुरा जानकर** अनिष्टरूप श्रद्धान करता है तथा किन्ह **परद्रव्योंको** अच्छा **मानकर** इष्टरूप श्रद्धान करता है, लेकिन परद्रव्योमे इष्ट—अनिष्टरूप श्रद्धान करना वह मिथ्यात्व है। और उसी श्रद्धान से उसे उदासीनता भी द्वेषबुद्धिरूप होती है, क्योकि किसीको बुरा जाननेका नाम ही द्वेष है।

प्रश्न (१३४)—द्रव्यलिंगी मुनि आदिको भ्रम होता है उसका कारण तो कर्म ही होगे न ? वहाँ पुरुषार्थ क्या करे ?

उत्तर—नही, वहाँ कर्मका दोष नही है। सच्चे उपदेश द्वारा निर्णय करनेसे भ्रम दूर होता है, किन्तु वे सच्चा पुरुषार्थ नही करते कि जिससे भ्रम दूर हो। यदि निर्णय करनेका पुरुषार्थ करे तो भ्रमका निमित्त कारण जो मोहकर्म उसका भी उपशम हो जाये और भ्रम दूर हो, क्योकि तत्त्व निर्णय करते हुये परिणामोकी विशुद्धता होती है और मोहके स्थिति—अनुभाग भी कम हो जाते हैं।

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ४५७)

प्रश्न (११५)—सम्यग्दर्शन प्रगट हो
है और चारित्र प्रगट न होनेमें
है—उसका अभाव हुए बिना जीव
इसलिये धर्म न होनेमें चारित्रमोहका
उत्तर—नहीं अपने विपरीत पुरुषार्थसे ही
पुरुषार्थपूर्वक तत्त्व निर्णय करनेमें
मोहका अभाव होता है और
है इसलिये प्रथम ही तत्त्व निर्णयमें उपयोग
करना चाहिये । उपदेश भी यही पुरुषार्थकी
और उस पुरुषार्थसे मोक्षके उपायकी
प्राप्त होती है ।

तत्त्व निर्णय करनेमें कर्मोका कोई दोष
जीवका ही दोष है । जो जीव कर्मोका
अपना दोष होनेपरभी कर्मोपर दोष डालता है—वह
है । जो भी सर्वज्ञ भगवानकी आज्ञा माने उसके ऐसी
नहीं हो सकती । जिसे धर्म करना अच्छा नहीं लगता
ऐसा झूठ बोलता है । जिसे मोक्ष—सुखकी सच्ची
है वह ऐसी झूठी युक्ति नहीं बनायेगा ।

जीवका कर्तव्य तो तत्त्वज्ञानका अभ्यास ही है, और
से स्वयं दर्शनमोहका उपशम होता है । दर्शनमोहके
में जीवका कर्तव्य कुछ भी नहीं है । पुनश्च
जीव स्वसन्मुखता द्वारा वीतरागतामें वृद्धि करता
उसके चारित्रमोहका अभाव होता है और
जीवके नग्न दिगम्बर तथा २८ मूलगुण

पना प्रगट होता है। उस दशामेभी जीव अपने ज्ञायक स्वभाव मे रमणतारूप पुरुषार्थ द्वारा धर्म परिणतिको बढाता है, वहाँ परिणाम सर्वथा शुद्ध होनेपर केवलज्ञान और मोक्षदशारूप सिद्ध पद प्राप्त करता है।

प्रश्न (१३६)–जिसे जाननेसे मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति हो वैसा अवश्य जानने योग्य–प्रयोजनभूत क्या २ है ?

उत्तर—सर्व प्रथम—

१–हेय–उपादेय तत्त्वोकी परीक्षा करना।

२–जीवादि द्रव्य, सात तत्त्व तथा सुदेव–गुरु–धर्मको पहिचानना।

३–त्यागने योग्य मिथ्यात्व–रागादिक, तथा ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शन–ज्ञानादिकका स्वरूप जानना।

४–निमित्त–नैमित्तिक आदिको जैसे हैं वैसाही जानना।

–इत्यादि जिनके जाननेसे मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति हो उन्हे अवश्य जानना चाहिये, क्योकि वे प्रयोजन-भूत हैं।

प्रश्न (१३७)–देव–गुरु–धर्म तथा सत् शास्त्र और तत्त्वादिका निर्धार न करे तो नहीं चल सकता ?

उत्तर—उनके निर्धार बिना किसीप्रकार मोक्षमार्ग नही होता—ऐसा नियम है।

प्रश्न (१३८)–मोक्षमार्ग (मोक्षका उपाय) निरपेक्ष है ?

उत्तर—हाँ, परम निरपेक्ष है। इससम्बन्धमें श्री नियमसार (गाथा-२) की टीकामें कहा है कि —"निज परमात्म तत्त्वके सम्यक्–श्रद्धान–ज्ञान-आचरण (अनुष्ठान) रूप शुद्ध रत्नत्रयात्मक मार्ग

२–फिर जिनमतमे कहे हुये जीवादि तत्त्वोका विचार करना चाहिये, उनके नाम लक्षणादि सीखना चाहिये, क्योकि उस अभ्याससे तत्त्व श्रद्धानकी प्राप्ति होती है।

३–फिर जिनसे स्व–परका भिन्नत्व भासित हो वैसे विचार करते रहना चाहिये, क्योकि उस अभ्याससे भेदज्ञान होता है।

४–तत्पश्चात्, एक स्वमे स्व–पना माननेके हेतु स्वरूप का विचार करते रहना चाहिये, क्योकि उस अभ्याससे आत्मानुभवकी प्राप्ति होती है।

—इसप्रकार अनुक्रमसे उसे अगीकार करके फिर उसी मेंसे किसी समय देवादिके विचारमे, कभी तत्त्वके विचार में, कभी स्व–परके विचारमें तथा कभी आत्म विचारमे उपयोगको लगाना चाहिये।—इसप्रकार अभ्याससे दर्शनमोह मद होता जाता है और जीव वह पुरुषार्थ चालू रखे तो उसी अनुक्रमसे उसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो जाती हैं।

—(गु० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ३३०)
हि० देहलीवाला–पृ० ४८६–८७

प्रश्न (१४४)–इस क्रमको स्वीकार न करे तो क्या होगा ?

उत्तर—जो इस क्रमका उल्लघन करता है ऐसे जीवको देवादिककी मान्यताका भी ठिकाना नही रहता। वह अपनेको ज्ञानी मानता है, लेकिन वे सब चतुराईकी बातें हैं, इसलिए जबतक जीवको सच्चे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न हो तबतक क्रमपूर्वक उपरोक्तानुसार कार्य करना चाहिए।

—(मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृ० ४८६ देहली)

जो श्रद्धा होती है वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। [उस पर्यायका धारक सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुण है, सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन उसकी पर्यायें हैं।]

प्रश्न (१४७)–सम्यग्दर्शन होनेपर श्रद्धा कैसे होती है ?

उत्तर—मैं आत्मा हूं, मुझे रागादिक नही करना चाहिये।

—(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ४६०)

प्रश्न (१४८)–तो फिर सम्यग्दृष्टि जीव विषयादिकमें क्यो प्रवर्तमान होता है।

उत्तर—सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् भी चारित्र गुणकी पर्याय निर्बल होनेसे जितने अशमें चारित्र मोहके उदयमे युक्त होता है उतने अशमें उसे रागादि होते हैं, किन्तु वह परवस्तुसे रागादिका होना नही मानता। सम्यग्दृष्टि जीवको देहादि पर पदार्थ, द्रव्यकर्म तथा शुभाशुभ रागमें एकत्व बुद्धि नही होती।

प्रश्न (१४९)–सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् देश चारित्र अथवा सकल चारित्रका पुरुषार्थ कब प्रगट होता है ?

उत्तर—धर्मी जीव अपने पुरुषार्थसे धर्म कार्योंमें तथा वैराग्यादि की भावनामे (एकाग्रता में) ज्यो २ विशेष उपयोगको लगाता है त्यो २ उसके बलसे चारित्र मोह मन्द होता जाता है।— इसप्रकार यथार्थ पुरुषार्थमें वृद्धि होनेमें देश चारित्र प्रगट होता है और विशेष शुद्धि होनेपर सकल चारित्रका पुरुषार्थ प्रगट होता है।

प्रश्न (१५०)–सम्यक्चारित्र प्रगट करनेके पश्चात् धर्मी जीव क्या करता है ?

उत्तर—१–एकाकार निजज्ञायक स्वभावमें विशेष २ रमणता करने

उत्तर—नही, सम्यग्ज्ञान कही दो प्रकारका नही है किन्तु उसका निरूपण दो प्रकारसे है। जहाँ सच्चे सम्यग्ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहा है वह निश्चय सम्यग्ज्ञान है, किन्तु जो सम्यग्ज्ञान तो नही है परन्तु सम्यग्ज्ञानका निमित्त है अथवा सहचारी है उसे उपचारसे सम्यक्ज्ञान कहा जाता है, इसलिये निश्चय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना चाहिये, तथा व्यवहारनय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना चाहिये।

प्रश्न (१५३)–निश्चयचारित्र और व्यवहारचारित्र ऐसा दो प्रकार का चारित्र है ?

उत्तर—नही, चारित्र तो दो नही है, किन्तु उसका निरुपण दो प्रकार से है। जहाँ सच्चे चारित्रको चारित्र कहा है वह निश्चय चारित्र है, तथा जो सम्यक्चारित्र तो नही है किन्तु सम्यक् चारित्रका निमित्त है अथवा सहचारी है उसे उपचारसे चारित्र कहते हैं, वह व्यवहार सम्यक्चारित्र है। निश्चयनय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान करना चाहिये और व्यवहारनय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना चाहिये।

प्रश्न (१५४)–यदि ऐसा है तो जिनमार्गमें दोनो नयोका ग्रहण करने को कहा है उसका क्या कारण ?

उत्तर—(१) जिनमार्गमे कही तो निश्चयनयकी मुख्यता सहित व्याख्यान है, उसे तो "**सत्यार्थ ऐसा ही है,**" ऐसा जानना चाहिये तथा किसी स्थानपर व्यवहारनयकी मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे "**ऐसा नहीं है किन्तु निमित्तादिकी अपेक्षासे यह उपचार किया है**"—ऐसा जानना चाहिये और **इसप्रकार**

प्रश्न (१५५)–मोक्षमार्ग एकही है या अधिक हैं ?

उत्तर—(१) मोक्षमार्ग एक ही है और वह निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान चारित्रकी एकता ही है।

(२) श्री प्रवचनसार गाथा १९९ की टीकामें कहा है कि–'समस्त सामान्य चरम शरीरी तीर्थंकर और अचरम शरीरी मुमुक्षु इसी यथोक्त शुद्धात्म तत्त्व प्रवृति लक्षण विधि द्वारा प्रवर्तमान मोक्षमार्गको प्राप्त करके सिद्ध हुए, परन्तु ऐसा नही है कि अन्य विधिसे भी हुए हो, इसलिये निश्चित होता है कि मात्र यह एक ही मोक्षका मार्ग है, अन्य नही है।"

(३) श्री प्रवचनसार गाथा ८२ तथा उसकी टीकामें कहा है कि —"सर्व अरिहन्त भगवन्त उसी विधिसे कर्मांशो का क्षय करके तथा अन्यको भी उसीप्रकार उपदेश देकर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं।"

टीका —अतीतकालमें क्रमश होगये समस्त तीर्थंकर भगवन्त, **प्रकारान्तरका असम्भव होनेके कारण** जिसमें द्वैत सम्भव नही है ऐसे इसी एकप्रकारसे कर्मांशोके क्षयका स्वय अनुभव करके तथा परम आप्तपनेके कारण भविष्यकालमें अथवा इस (वर्तमान) कालमें अन्य मुमुक्षुओको भी इसीप्रकार उसका (कर्म क्षयका) उपदेश करके, नि श्रेयसको प्राप्त हुए है, **इसलिये निर्वाणका अन्य (कोई) मार्ग नहीं है–ऐसा निश्चित होता है।"**

(४) श्री नियमसार गाथा ९०, कलश १२१ मे कहा है कि–"जो मोक्षका किंचित् कथन मात्र (कहने मात्र) कारण है उसे (व्यवहार रत्नत्रयको) भी भवसागरमें डूबे हुए जीव ने पहले भव–भव में (अनेक भवमें) सुना है और उसपर

आचरण किया है।
ज्ञान है उसे [कारणरूप
परमात्म तत्त्वको] जीवने

(१)

कि— जिसने ज्ञानज्योति द्वारा
किया है और जो पुराण (
क्योंकि चित्त कमलमें स्पष्ट है, वह
वचन मनो–मार्गसे अतिक्रान्त (वचन
मनोचर) है। उस निकट परमें पुरुषोंको
निवेश क्या ?

—इसप्रकार पद्य द्वारा परम जिन
व्यवहार–आलोचनाके प्रपंचका उपहास(हँसी)
किया है।"

एवमनेन पद्येन व्यवहारालोचनाप्रपंचमुपहसति
परमजिनयोगीश्वरः। —[श्री नियमसार पृ० २१४

(६) श्री नियमसार गाथा ३ में कहा है कि—
'नियम अर्थात् नियमसे (निश्चय) जो करने
योग्य अर्थात् ज्ञान–दर्शन–चारित्रसे विपरीतके
(–ज्ञान दर्शन चारित्रसे विरुद्ध भावोंके त्यागके लिये
सचमुच सार' ऐसा वचन कहा है।'

(७) श्री समयसार गाथा १५६ की टीकामेंभी कहा है
कि—'परमार्थ मोक्ष हेतुसे पृथक् जो व्रत तपादि शुभकर्म स्व–
रूप मोक्ष हेतु कुछ लोग मानते हैं उस सम्पूर्ण का निषेध किया
गया है क्योंकि वह (मोक्षहेतु) अन्य द्रव्यके स्वभाव वाला

(अर्थात् पुद्गल स्वभावी) होनेसे उसके स्व-भाव द्वारा ज्ञान का भवन नहीं होता—मात्र परमार्थ मोक्ष हेतु ही एक द्रव्यके स्वभाववाला (अर्थात् जीवस्वभावी) होनेसे उसके स्वभाव द्वारा ज्ञानका भवन होता है।"

(८) 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग'-ऐसा (शास्त्रका) वचन होनेसे, मार्ग तो शुद्ध रत्नत्रय है।

—(श्री नियमसार गाथा २ की टीका)

(९) निज परमात्मा तत्त्वके सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठान रूप शुद्ध रत्नत्रयात्मक मार्ग परम निरपेक्ष होनेसे मोक्ष का उपाय है। (श्री नियमसार गाथा २ की टीका)

प्रश्न (१५६)-सम्यक्दर्शन में "सम्यक्" शब्द क्या बतलाता है ?

उत्तर—विपरीत अभिनिवेश (अभिप्राय) के निराकरणके हेतु सम्यक् पदका उपयोग किया है, क्योंकि "सम्यक्" शब्द प्रशसा वाचक है इसलिये श्रद्धानमे विपरीत अभिनिवेशका अभाव होते ही प्रशसा सम्भव होती है। —(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ४६५)

प्रश्न (१५७)-चारित्रमें "सम्यक्" शब्द किसलिये है ?

उत्तर—अज्ञान पूर्वकके आचरणकी निवृत्तिके लिये है, क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक आत्मामे स्थिरता वह सम्यक् चारित्र है।

प्रश्न (१५८)-तत्त्वार्थ श्रद्धान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव-अजीवादि सात तत्त्वार्थ हैं, उनका जो श्रद्धान अर्थात् "ऐसा ही है, अन्यथा नही है"—ऐसा प्रतीतिभाव वह तत्त्वार्थ श्रद्धान है तथा विपरीत अभिनिवेश अर्थात् अन्यथा अभिप्राय रहित श्रद्धा सो सम्यक्दर्शन है।

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ४६५)

सदैव रहता है, इसलिये उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन नही माना जा सकता। (मोक्षमार्ग प्र०, पृ० ४७०-७१,४७५)

प्रश्न (१६२)–तिर्यंचादि जो अल्पज्ञानवाले हैं उन्हे, और केवली तथा सिद्धभगवानको निश्चय सम्यग्दर्शन समान ही होता है ?

उत्तर—(१) हाँ, तिर्यंच और केवली भगवानमें ज्ञानादिककी हीनाधिकता होनेपरभी उनमें सम्यग्दर्शन तो समान ही कहा है। जैसा सात तत्त्वोका श्रद्धान छद्मस्थको होता है, वैसा ही केवली तथा सिद्धभगवानको भी होता है। छद्मस्थको श्रुतज्ञान के अनुसार प्रतीति होती है उसी प्रकार केवली और सिद्धभगवानको केवलज्ञानानुसार ही प्रतीति होती है।

(२) मूलभूत जीवादिके स्वरूपका श्रद्धान जैसा छद्मस्थ को होता है वैसा ही केवलीको तथा सिद्धभगवानको होता है।

(३) केवली–सिद्धभगवान रागादिरूप परिणमित नही होते और ससारदशाकी इच्छा नही करते वह इस श्रद्धाकाही बल जानना। (मोक्षमार्ग प्र० पृ० ४७५)

प्रश्न (१६३)–बाह्य सामग्रीके अनुसार सुख–दु ख हैं यह मांन्यता सच्ची है ?

उत्तर—नही, परद्रव्यरूप बाह्य सामग्रीके अनुसार सुख–दु ख नही है, किन्तु कषायसे इच्छा उत्पन्न हो तथा इच्छानुसार बाह्य सामग्री प्राप्त हो जाये, तथा कषायके उपशमनसे कुछ आकुलता कम हो तब सुख मानता है, और इच्छानुसार सामग्री न मिलने से कषायमें वृद्धि होनेपर आकुलता बढे तब दु ख मानता है। अज्ञानी मानता है कि मुझे परद्रव्यके निमित्तसे सुख–दु ख होते हैं—ऐसी मान्यता भ्रम ही है। (मोक्षमार्ग प्र० पृ० ४५३)

५–वही यथास्थित आत्म गुण होनेसे (अर्थात् विषमता रहित–सुस्थित–आत्माका गुण होनेसे) साम्य है और—

५–मोह–क्षोभके अभावके कारण अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीवका परिणाम है ।

(श्री प्रवचनसार गाथा ७ तथा टीका)

प्रश्न (१६८)–आस्रवोके अभावका क्रम क्या है ?

उत्तर—१–चौथा गुणस्थान (अविरति सम्यग्दृष्टि) प्रगट होनेपर मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीका अभाव होता है, और साथ ही तत्सम्बन्धी अविरति, प्रमाद, कषाय और योगका भी अभाव होत है ।

(श्री समयसार गाथा ७३ से ७६ का भावार्थ)

२–पाँचवें गुणस्थानमे तदुपरात प्रत्याख्यानावरणीय कषाय का अभाव होनेसे तत्सम्बन्धी आशिक अविरति आदि का अभाव होता है ।

३–छट्ठे गुणस्थानमे तदुपरात अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय का अभाव होनेपर तत्सम्बन्धी आशिक प्रमादादिका अभाव होता है ।

४–सातवें गुणस्थानमे तदुपरात सज्वलन कषायकी तीव्रता का अभाव होनेपर तत्सम्बन्धी प्रमादादिका अभाव होता है ।

५–आठवे गुणस्थानसे स्वभावका भलीभाँति अवलम्बन लेनेसे श्रेणी चढकर वह जीव क्षीणमोह जिन–वीतराग ऐसे बारहवे गुणस्थानको प्राप्त करता है । बारहवे

दरवान् है (उपेक्षावान) अनासक्त है, और जो व्यव-
हारमे आदरवान् है–आसक्त है वह आत्मबोधको प्राप्त
नही होता ।

(–समाधि शतक–श्लोक ७८ की उत्थानिका)

प्रश्न (१७२)–ज्ञेय क्या है ?

उत्तर—स्व–पर अर्थात् सात तत्त्व सहित जीवादि छहो द्रव्योका
स्वरूप ।

प्रश्न (१७३)–उपादेय क्या है ?

उत्तर—१–एकाकार ध्रुव ज्ञायक स्वभावरूप निज आत्माही उपादेय
है ।

(देखो नियमसार गाथा ३८ तथा ५० और उसकी टीका)

२–निश्चय–व्यवहार दोनोको उपादेय मानना वह भी भ्रम
है । मिथ्याबुद्धि ही है ।

—(देहली सस्ती ग्रन्थमाला मोक्षमार्ग प्र० पृ० ३६७)

जीवके असाधारण भाव

प्रश्न (१७४)–जीवके असाधारण भाव कितने हैं ?

उत्तर—पाँच है —(१) औपशमिक, (२) क्षायिक, (३) क्षायो-
पशमिक, (४) औदयिक और (५) पारिणामिक–यह पाँच
भाव जीवोके निजभाव है । जीवके अतिरिक्त अन्य किसीमे
वे नही होते ।

प्रश्न (१७५)–**औपशमिक** भाव किसे कहते है ?

उत्तर—कर्मोंके उपशमके साथ सम्बन्धवाला आत्माका जो भाव
होता है उसे औपशमिक भाव कहते हैं ।

४—फल दिये विना उदयमे आये हुए कर्मोका खिर जाना उसे उदयाभावी क्षय कहते है।

५—जो जीवके ज्ञानादि गुणोको एकदेश घात होनेमे निमित्त है उसे देशघाती कहते हैं।]

प्रश्न (१७८)–औदयिक भाव किसे कहते है ?

उत्तर—कर्मोके उदयके साथ सबंध रखनेवाला आत्माका जो विकारी भाव होता है उसे औदयिक भाव कहते है।

प्रश्न (१७९)–पारिणामिक भाव किसे कहते है ?

उत्तर—कर्मोका उपशम, क्षय, क्षयोपशम अथवा उदयकी अपेक्षा रखे विना जीवका जो स्वभाव मात्र हो उसे पारिणामिक भाव कहते हैं। (जैन सि० प्र० बरैयाजीकृत)

"जिसका निरन्तर सद्भाव रहे उसे पारिणामिक भाव कहते हैं। सर्वभेद जिसमे गर्भित हैं ऐसा चैतन्यभाव ही जीवका पारिणामिक भाव है। मतिज्ञानादि तथा केवलज्ञानादि जो अवस्थाऐं है वे पारिणामिक भाव नही हैं।

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० २८४-८५)

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान–यह अवस्थाऐं क्षायोपशमिकभाव हैं, केवलज्ञान अवस्था क्षायिकभाव है।

केवलज्ञान प्रगट होनेसे पूर्वज्ञानके विकासका जितना अभाव है वह औदयिकभाव है।

ज्ञान, दर्शन और वीर्य गुणकी अवस्थामे औपशमिक भाव होता ही नही, मोहका ही उपशम होता है, उसमे प्रथम मिथ्यात्वका (दर्शन मोहका) उपशम होने पर जो सम्यक्त्व प्रगट होता है वह श्रद्धा गुणका औपशमिक भाव है।"

(मोक्षशास्त्र अ० २ सू० १ की टीका)

प्रश्न (१८०

उत्तर-(१) जीवका

(२) जीवका अनादि [illegible]
उसकी अवस्थायें
करता है।

(३) जड़कर्मके साथ जीवका
जीव उसके वश होता है
किन्तु कर्मके कारण विकारमें
औदयिकभाव सिद्ध करता है।

(४) जीव अनादिसे विकार करता
जड़ नहीं हो जाता और उसके
का प्रगट विकास तो सदैव
पशमिक भाव सिद्ध करता है।

(५) सच्ची समझके पश्चात् जीव ज्यों-ज्यों सत्य
बढ़ाता है त्यों-त्यों मोह क्रमशः दूर होता जाता
ऐसा भी क्षायोपशमिक भाव सिद्ध करता है।

(६) आत्माका स्वरूप यथार्थतया समझकर जब
पारिणामिकभावका आश्रय करता है
दूर होनेका प्रारम्भ होता है और क्रमशः
औदयिकभाव दूर होता है—ऐसा
करता है।

(७) यदि
मोह स्वयं दब जाता है (

—ऐसा भी औपशमिकभाव सिद्ध करता है ।

(८) अप्रतिहत पुरुषार्थ द्वारा पारिणामिक भावका आश्रय बढनेपर विकारका नाश हो सकता है—ऐसा क्षायिक भाव सिद्ध करता है ।

(९) यद्यपि कर्मके साथका सम्बन्ध प्रवाहसे अनादिकालीन है तथापि प्रतिसमय पुराने कर्म जाते है और नये कर्मोका सम्बन्ध होता रहता है, उस अपेक्षासे उसमे प्रारम्भिकता रहनेसे (सादि होनेसे) वह कर्मोके साथका सम्बन्ध सर्वथा दूर होजाता है—ऐसा क्षायिकभाव सिद्ध करता है ।

(१०) कोई निमित्त विकार नही कराता, किन्तु जीव स्वय निमित्ताधीन होकर विकार करता है । जीव जब पारिणामिकभावरूप अपने स्वभावकी ओर का लक्ष करके स्वाधीनता प्रगट करता है तब निमित्ताधीनता दूर होकर शुद्धता प्रगट होती है—ऐसा औपशमिक, साधक दशाका क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव—यह तीनो सिद्ध करते हैं ।"—(मोक्षशास्त्र अ० २-सूत्र १ की टीका)

प्रश्न (१८१)—औपशमिकभावके कितने भेद हैं ?

उत्तर—उसके दो भेद हैं—१—सम्यक्त्वभाव और २—चारित्र भाव ।

प्रश्न (१८२)—क्षायिकभावके कितने भेद है ?

उत्तर—उसके नव भेद हैं—१—क्षायिक सम्यक्त्व, २—क्षायिक चारित्र, ३—क्षायिकदर्शन, ४—क्षायिकज्ञान, ५—क्षायिकदान, ६—क्षायिक लाभ, ७—क्षायिक भोग, ८—क्षायिक उपभोग, ९—क्षायिक वीर्य ।

प्रश्न (१८३)—क्षायोपशमिकभावके कितने भेद हैं ?

का माहात्म्य जानकर उस ओर जीव अपनी वृति करे (–झुकाव करे) तो धर्मका प्रारम्भ होता है और उस भावकी एकाग्रताके बलसेही धर्मकी पूर्णता होती है।"

—(स्वा० ट्रस्ट प्रकाशित मोक्षशास्त्र अ० २, सूत्र १ की टीका)

प्रश्न (१८८)–सर्व औदयिकभाव बन्धका कारण है ?

उत्तर—१–"सर्व औदयिकभावबन्धका कारण हैं–ऐसा नही समझना चाहिये, किन्तु मात्र मिथ्यात्व, असयम, कषाय और योग–यह चार भाव बन्धका कारण हैं।

(देखो, श्री धवला पु० ७, पृ० ९)

२–" यदि जीव मोहके उदयमे युक्त हो तो बन्ध होता है, द्रव्यमोहका उदय होनेपर भी यदि जीव शुद्धात्म भावना के बल द्वारा **भाव मोहरूप** परिणमित न हो तो बन्ध नही होता। यदि जीवको कर्मोदयके कारण बन्ध होता हो तो ससारीको सर्वदा कर्मका उदय विद्यमान है इसलिये उसे सर्वदा बन्ध होगा, कभी मोक्ष होगा ही नही।" इसलिये ऐसा समझना कि कर्मका उदय बन्धका कारण नही है किन्तु जीवका **भाव मोहरूप परिणमन** बन्धका कारण है।

(देखो, प्रवचनसार (हिंदी) पृ० ५८-५९ जयसेनाचार्य कृत टीका)

प्रश्न (१८९)–औदयिक भावमे जो अज्ञान भाव है और क्षायोपशमिक भावमे जो अज्ञान भाव है–उनमे क्या अन्तर है ?

उत्तर—"औदयिक भावमे जो अज्ञानभाव है वह अभावरूप होता है और क्षायोपशमिक अज्ञानभाव मिथ्यादर्शनके कारण दूषित होता है।"

(मोक्षशास्त्र (हिंदी), प० फूलचन्दजी सपादित, पृ० ३१ फुटनोट)

उत्तर– ससारी जीव सच्चे [वास्तविक] सुखका स्वरूप और उसका उपाय नही जानते, और उसका साधन भी नही करते, इसलिये वे सच्चे सुखको प्राप्त नही कर सकते ।

प्रश्न (१६३)–सच्चे [–असली) सुखका स्वरूप क्या है ?

उत्तर—आल्हाद स्वरूप जीवके अनुजीवी सुख गुणकी शुद्ध दशा को सच्चा सुख कहते है, वही जीवका मुख्य स्वभाव है, परन्तु ससारी जीवोने भ्रमवश सातावेदनीय कर्मके निमित्तसे होने वाले वैभाविक परिणतिरूप सातापरिणामको ही सुख मान रखा है ।

प्रश्न (१६४)–ससारी जीवोको सच्चा सुख [असली सुख] क्यो नही मिलता ?

उत्तर—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रके कारण ससारी जीवोको सच्चा [असली] सुख नही मिलता ।

प्रश्न (१६५)–ससारी जीवोको सच्चा सुख कब प्राप्त होता है ?

उत्तर—ससारी जीवोको परिपूर्ण सच्चा सुख मोक्ष होने पर प्राप्त होता है । उनको सच्चे सुखका आशिक प्रारम्भ निश्चय सम्यग्दर्शनसे [चौथे गुणस्थानसे] होता है ।

प्रश्न (१६६)–मोक्षका स्वरूप क्या है ?

उत्तर—आत्मासे समस्त भाव कर्मो तथा द्रव्यकर्मोके विप्रमोक्षको [अत्यन्त वियोगको] मोक्ष कहते हैं ।

प्रश्न (१६७)–उस मोक्षकी प्राप्तिका कौन–सा उपाय है ?

उत्तर—सवर और निर्जरा मोक्ष प्राप्तिका उपाय है ।

प्रश्न (१६८)–सवर किसे कहते है ?

उत्तर—आस्रवके निरोधको सवर कहते है, अर्थात् नये विकारका

४–अविरत सम्यग्दृष्टि, ५–देशविरत, ६–प्रमत्तविरत, ७–अप्रमत्त विरत, ८–अपूर्वकरण, ९–अनिवृत्ति करण, १०–सूक्ष्म-साम्पराय, ११–उपशात मोह, १२–क्षीणमोह, १३–सयोग केवली, १४–अयोग केवली ।

प्रश्न (२०५)–गुणस्थानोके यह नाम होनेका क्या कारण है ?

उत्तर—गुणस्थानोके नाम होनेका कारण मोहनीयकर्म और योग है।

प्रश्न (२०६)–किस–किस गुणस्थानका कौन निमित्त है ?

उत्तर—आदिके चार गुणस्थानोको दर्शनमोहनीय कर्मका निमित्त है। पाँचवेंसे लेकर बारहवे गुणस्थान तकके आठ गुणस्थानो को चारित्रमोहनीय कर्मका निमित्त है, और तेरहवें तथा चौदहवे गुणस्थानको योगका निमित्त है।

पहला मिथ्यात्व गुणस्थान दर्शनमोहनीयकर्मके उदयके निमित्तसे होता हैं, उसमे आत्माको परिणाम मिथ्यात्वरूप होते हैं ।

चौथे गुणस्थानके लिये दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमका निमित्त है। इस गुणस्थानमे आत्मा की निश्चय सम्यग्दर्शन पर्यायका प्रादुर्भाव हो जाता है ।

तीसरे सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थानके लिये दर्शन-मोहनीयकर्मका उदय निमित्त है, इस गुणस्थानमे आत्माके परिणाम सम्यग्मिथ्यात्व अथवा उदयरूप होते हैं।

पहले गुणस्थानमे औदयिकभाव, चौथे गुणस्थानमे औपशमिक क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक भाव, और तीसरे गुणस्थानमे औदयिकभाव होते हैं, परन्तु दूसरा गुणस्थान दर्शनमोहनीय कर्मकी उदय, उपशम, क्षय और क्षायोपशम, इन

गुणस्थानकी भाँति सम्यक्चारित्रकी पूर्णता नही है। सम्यग्ज्ञान यद्यपि चौथे गुणस्थानमे ही प्रगट होजाता है।

भावार्थ —यद्यपि आत्माके ज्ञान गुणका विकास अनादि कालसे प्रवाहरूप चल रहा है तथापि मिथ्यामान्यताके कारण वह ज्ञान मिथ्यारूप था, किन्तु चौथे गुणस्थानमे जब निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ तब वही आत्माकी ज्ञानपर्याय सम्यग्ज्ञान कहलाने लगी और पचमादि गुणस्थानोमे तपश्चरणादिके निमित्तके सम्बन्धसे अवधि, मन पर्ययज्ञान भी किसी-किसी जीवके प्रगट होजाते है, तथापि केवलज्ञान हुए बिना सम्यग्ज्ञान की पूर्णता नही हो सकती, इसलिये बारहवें गुणस्थान तक यद्यपि सम्यग्दर्शनकी पूर्णता होगई है। (क्योकि क्षायिक सम्यक्त्वके बिना क्षपक श्रेणी नही चढी जासकती और क्षपक श्रेणीके बिना बारहवें गुणस्थानमे नही पहुचा जा सकता) तथापि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र गुण अभीतक अपूर्ण है, इसलिये अभीतक मोक्ष नही होता। बारहवे गुणस्थानमे चारित्र गुण क्षायिक भावके कारण पूर्ण हो चुका किन्तु आनुशगिक अन्यगुणोके चारित्र पूर्ण नही है।

तेरहवाँ सयोग केवली गुणस्थान योगोके सद्भावकी अपेक्षासे होता है, इसलिये उसका नाम सयोग और केवलज्ञान के सद्भावसे सयोग केवली है। इस गुणस्थानमे सम्यग्ज्ञानकी पूर्णता होजाती है, किन्तु समस्त गुणोके चारित्रकी पूर्णता न होने से मोक्ष नही होता।

चौदहवाँ अयोगकेवली गुणस्थान योगोके अभावकी अपेक्षा से होता है, इसलिये उसका नाम अयोगकेवली है। इस गुणस्थान

उपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

२—क्षायिक सम्यक्त्वः—जीवका स्वसन्मुख पुरुपार्थ पूर्वक उद्यम हो तव सातो प्रकृतियोका क्षय होता है, उस समय जीवका जो भाव हो उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं।

३—क्षायोपशमिक सम्यक्त्वः—छह प्रकृतियो (मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ) के अनुदय और सम्यक् प्रकृति नामकी प्रकृतिके उदयमे युक्त होनेसे जो भाव उत्पन्न हो उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। [विशेपके लिये शास्त्रोसे देखना]

उपशम सम्यक्त्वके दो भेद हैं—(१) प्रथमोपशम-सम्यक्त्व, और (२) द्वितीयोपशम सम्यक्त्व।

प्रश्न (२१०)—प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर—अनादि मिथ्यादृष्टिको पाँच (मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी क्रोध–मान–माया–लोभ) प्रकृतियाँ और सादि मिथ्यादृष्टिको सात प्रकृतियोके उपशमसे जो उत्पन्न हो उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न (२११)—द्वितीयोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—सातवें गुणस्थानमे क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव श्रेणी चढनेकी सन्मुख दशामे अनन्तानुवन्धी चतुष्टय (क्रोध–मान–माया–लोभ) का विसयोजन (अप्रत्याख्यानादिरूप) करके दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोके उपशमकालमे जो सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसे द्वितयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न (२१२)-(३) **मिश्र गुणस्थान** किसे कहते हैं ?

उत्तर—सज्वलन तथा नो कपायके तीव्र उदयमे युक्त होनेसे सयम भाव तथा मल जनक प्रमाद—यह दोनो एक साथ होते है, (यद्यपि सज्वलन और नो कपायका उदय चारित्र गुणके विरोध मे निमित्त है, तथापि प्रत्याख्यानावरण कपायका अभाव होनेसे प्रादुर्भूत सकल सयम है) इसलिये इस गुणस्थानवर्ती मुनिको प्रमत्त विरत अर्थात् चित्रलाचरणी कहते हैं।

प्रश्न (२१६)-(६) **अप्रमत्त विरत गुणस्थान** का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जीवके पुरुपार्थसे सज्वलन और नो कषायका मद उदय होता है तब प्रमाद रहित सयमभाव प्रगट होता है, इस कारण से इस गुणस्थानवर्ती मुनिको अप्रमत्त विरत कहते हैं।

प्रश्न (२१७)—अप्रमत्त विरत गुणस्थानके कितने भेद है ?

उत्तर—उसके दो भेद है—१—स्वस्थान अप्रमत्तविरत और २—सातिशय अप्रमत्तविरत।

प्रश्न (२१८)—स्वस्थान अप्रमत्तविरत किसे कहते है ?

उत्तर—जो हजारो बार छठवें से सातवे गुणस्थानमे और सातवेसे छठवे गुणस्थानमें आयें—जायें उसे स्वस्थान अप्रमत्तविरत कहते हैं।

प्रश्न (२१९)—सातिशय अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो श्रेणी चढनेके सन्मुख हो उसे सातिशय अप्रमत्त विरत कहते हैं।

प्रश्न (२२०)—श्रेणी चढनेके लिये कौन पात्र है ?

उत्तर—क्षायिक सम्यग्दृष्टि और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि ही श्रेणी चढते हैं, प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाले तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वाले श्रेणी नही-चढ सकते।

२–नववा अनिवृत्तिकरण, ३–दसवा सूक्ष्मसाम्पराय, और ४–ग्यारहवाँ उपशान्त मोह ।

प्रश्न (२२७)–क्षपक श्रेणीके कौन–कौनसे गुणस्थान है ।

उत्तर—उसके–आठवाँ अपूर्वकरण–नववाँ अनिवृत्तिकरण; दसवाँ सूक्ष्म साम्पराय और वारहवाँ क्षीणमोह–यह चार गुणस्थान हैं ।

प्रश्न (२२८)–चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोके उपशमको तथा क्षयको आत्माके कौनसे परिणाम निमित्त कारण हैं ?

उत्तर—अध करण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण–यह तीन परिणाम निमित्तकारण हैं ।

प्रश्न (२२९)–अध करण परिणाम किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस करणमे (परिणाम समूहमे) उपरितन समयवर्ती तथा अधस्तन समयवर्ती जीवोके परिणाम सदृश और विसदृश हो उसे अध करण कहते है । वह अध.करण सातवे गुणस्थान मे होता है ।

प्रश्न (२३०)–अपूर्वकरण परिणाम किसे कहते है ?

उत्तर—जिस करणमे उत्तरोत्तर अपूर्व–अपूर्व परिणाम होते जाये अर्थात् भिन्न समयवर्ती जीवोके परिणाम सदैव विसदृश ही हो और एक समयवर्ती जीवोके परिणाम सदृश भी हो तथा विसदृश भी हो उसे अपूर्वकरण कहते हैं और वही **आठवाँ गुणस्थान है ।**

प्रश्न (२३१)–(९) अनिवृत्तिकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस करणमे भिन्न समयवर्ती जीवोके परिणाम विसदृश ही हो और एक समयवर्ती जोवोके परिणाम सदृश ही हो उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं, यही **नववाँ गुणस्थान है ।**

—इन तीनों

विशुद्धता वर्धित होता है।

प्रश्न (२१२)–(१०)

उत्तर—अत्यन्त सूक्ष्म [illegible]
होनेवाले जीवको सूक्ष्म
होता है।

प्रश्न (२१३)–(११) [illegible]

उत्तर—चारित्र मोहनीयकी २१ [illegible]
स्थात चारित्रको धारण करने वाले
मोह नामक गुणस्थान होता है। इस [illegible]
समाप्त होनेपर मोहनीयके उदयसे [illegible]
गुणस्थानोंमें आजाता है।

प्रश्न (२१४)–(१२) क्षीणमोह
वह किसे प्राप्त होता है?

उत्तर—मोहनीय कर्मका अत्यन्त क्षय होनेसे स्फटिक भाजन गत
जलकी भाँति अत्यन्त निर्मल अविनाशी यथाख्यात चारित्र[illegible]
धारक मुनिको क्षीणमोह नामक गुणस्थान होता है।

प्रश्न (२१५)–(१३) सयोगी गुणस्थानका क्या स्वरूप है? और
वह किसे प्राप्त होता है?

उत्तर—घातिया कर्मोंकी ४७ प्रकृतियाँ और अघातिया [illegible]
१६ प्रकृतियाँ—ऐसी ६३ प्रकृतियोंका क्षय होनेसे लोकालोक
प्रकाशक केवलज्ञान तथा आत्म प्रदेशोंके कम्पनरूप योगके
धारक अरिहन्त भट्टारकको सयोगी केवली नामका तेरहवाँ गुण-
स्थान प्राप्त होता है।

वे ही केवली भगवान अपनी दिव्य ध्वनिमे भव्य जीवो को मोक्षमार्गका उपदेश देकर संसारमे मोक्षमार्गका प्रकाश करते हैं।

(६३ प्रकृतियो के लिये देखो श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका)

प्रश्न (२३६)-(१४) **अयोगी केवली गुणस्थान** का क्या स्वरूप है? और वह किसे प्राप्त होता है?

उत्तर—योगोसे रहित और केवलज्ञान सहित अरिहत भट्टारक (भगवान) को चौदहवाँ अयोगी केवली गुणस्थान प्राप्त होता है।

इस गुणस्थानका काल अ, इ, उ, ऋ, लृ—इन पाँच ह्रस्व स्वरोके उच्चारमे जितना काल लगे उतना है। अपने गुणस्थानके कालके द्विचरम समयमे सत्ताकी ८५ प्रकृतियो मेसे ७२ प्रकृतियोका और चरम समय मे १३ प्रकृतियोका नाश करके अरिहन्त भगवान मोक्ष धाममे लोकके अग्र भागमे पधारते हैं।

[प्रत्येक गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियाँ सत्तामे होती है और कर्म प्रकृतियोका उदय होता है—आदि सम्बन्धी ज्ञानके लिये देखो "श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका"]

प्रश्न (२३७)—नव देवोके नाम बतलाइये।

उत्तर—अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, [शृ गारादि दोष रहित और साक्षात् जिनेश्वर समान हो ऐसी ही] जिन प्रतिमा तथा जिन मन्दिर—यह नवदेव हैं।

—(विद्वज्जन बोधक, भाव सग्रह, श्री लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका)

प्रश्न (२३८)—अविरत सम्यग्दृष्टिको मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी प्रकृतियोका आस्रव तो नही होता, किन्तु अन्य प्रकृतियोका तो

परिशिष्ट (१)

सर्वज्ञता की महिमा

❀ मोक्षमार्गके मूल उपदेशक श्री सर्वज्ञदेव है, इसलिये जिसे धर्म करना हो उसे सर्वज्ञको पहिचानना चाहिये ।

❀ निश्चयसे जैसा सर्वज्ञ भगवानका स्वभाव है वैसा ही इस आत्मा का स्वभाव है, इसलिये सर्वज्ञको पहिचाननेसे अपने आत्मा की पहिचान होती है, जो जीव सर्वज्ञको नही पहिचानता वह अपने आत्माको भी नही पहिचानता ।

❀ समस्त पदार्थोंको जाननेके सामर्थ्यरूप सर्वज्ञत्वशक्ति आत्मामे त्रिकाल है, किन्तु परमे कोई फेर फार करे—ऐसी शक्ति आत्मा मे कदापि नही है ।

❀ अहो ! समस्त पदार्थोंको जाननेकी शक्ति आत्मामे सदैव विद्यमान है, उसकी प्रतीति करनेवाला जीव धर्मी है ।

❀ वह धर्मी जीव जानता है कि मैं अपनी ज्ञान क्रियाओका स्वामी हूँ किन्तु परकी क्रियाका मैं स्वामी नही हूँ ।

❀ आत्मामे सर्वज्ञशक्ति है, उस शक्तिका विकास होनेपर अपनेमे सर्वज्ञता प्रगट होती है, किन्तु आत्माकी शक्तिका विकास परका कुछ कर दे—ऐसा नही होता ।

❀ साधकको पर्यायमे सर्वज्ञता प्रगट नही हुई है तथापि वह अपनी सर्वज्ञशक्तिकी प्रतीति करता है ।

❀ वह प्रतीति पर्यायकी ओर देखकर नही की है किन्तु स्वभावकी

समस्त आत्माओमे भरी है। "सर्वज्ञ" अर्थात् सबको जानने वाला। सर्वको जाने ऐसा महान महिमावन्त अपना स्वभाव है, उसे अन्यरूप—विकारी स्वरूप मान लेना वह आत्मा की बडी हिंसा है। आत्मा महान भगवान है, उसकी महानताके यह गीत गाये जारहे हैं।

❀ भाई रे! तू सर्व का 'ज्ञ' अर्थात् ज्ञाता है, किन्तु परमे फेरफार करनेवाला तू नही है। जहाँ प्रत्येक–प्रत्येक वस्तु भिन्न है वहाँ भिन्न वस्तुका तू क्या करेगा? तू स्वतन्त्र और वह भी स्वतन्त्र। अहो! ऐसी स्वतन्त्रताकी प्रतीति मे अकेली वीतरागता है।

❀ "अनेकान्त" अर्थात् मैं अपने ज्ञान तत्त्वरूप हूँ और पररूपसे नही हूँ—ऐसा निश्चय करते ही जीव स्वतत्त्वमे रह गया और अनन्त पर तत्त्वोसे उदासीनता होगई। इसप्रकार अनेकान्त मे वीतरागता आजाती है।

❀ ज्ञानतत्त्वकी प्रतीतिके बिना परकी ओर से सच्ची उदासीनता नही होती।

❀ स्व–परके भेद ज्ञान बिना वीतरागता नही होती। ज्ञानतत्त्वसे च्युत होकर "मैं परका कर्ता हूँ"—ऐसा मानना वह एकान्त है, उसमे मिथ्यात्व और रागद्वेष भरे हैं, वही ससार भ्रमणका मूल है।

❀ "मैं ज्ञानरूप हूँ और पररूप नही हूँ"—ऐसे अनेकातमे भेद-ज्ञान और वीतरागता है, वही मोक्षमार्ग है और परम अमृत है।

❀ जगत्मे स्व और पर सभी तत्त्व निज–निजस्वरूपसे सत् हैं, आत्माका स्वभाव उन्हें जाननेका है, तथापि "मैं परको बदलता

सर्वज्ञत्व शक्ति आत्मज्ञानमय है। जिसने आत्माको जाना उसने सर्व जाना।

❀ हे जीव! तेरे ज्ञानमात्र आत्माके परिणमनमे अनन्त धर्म एक साथ उछल रहे हैं, उसीमे झाँककर अपने धर्मको ढूँढ, कही बाह्यमे अपने धर्मको न खोज। तेरी अन्तर्शक्तिके अवलम्बन से ही सर्वज्ञता प्रगट होगी।

❀ जिसने अपनेमे सर्वज्ञता प्रगट होनेकी शक्ति मानी वह जीव देहादिकी क्रियाका ज्ञाता रहा, परकी क्रियाको वदलनेकी बाततो दूर रही, किन्तु अपनी पर्यायको आगे-पीछे करनेकी बुद्धि भी उसके नही होती। ज्ञान कही फेरफार नही करता मात्र जानता है। जिसने ऐसे ज्ञानकी प्रतीतिकी उसे स्वसन्मुख दृष्टिके कारण पर्याय-पर्यायमे शुद्धता बढती जाती है और राग छूटता जाता है।—इसप्रकार ज्ञानस्वभावकी दृष्टि वह मुक्ति का कारण है।

❀ "सर्वज्ञता" कहनेसे दूरके या निकटके पदार्थोंको जाननेमे भेद नही रहा, पदार्थ दूर हो या निकट हो उसके कारण ज्ञान करने मे कोई अन्तर नही पडता। दूरके पदार्थको निकट करना या निकटके पदार्थको दूर करना वह ज्ञानका कार्य नही है, किन्तु निकटके पदार्थकी भाँति ही दूरके पदार्थको भी स्पष्ट जानना ज्ञानका कार्य है। "सर्वज्ञता" कहनेसे सर्वको जानना आया, किन्तु उनमे कही "यह अच्छा, यह बुरा"—ऐसी बुद्धि या राग द्वेष करना नही आया।

❀ केवली भगवानको समुद्घात होनेसे पूर्व उसे जाननेरूप परिणमन होगया है, सिद्ध दशा होनेसे पूर्व उसका ज्ञान होगया है,

इतना ही जाननेकी नही किन्तु परिपूर्ण जाननेकी शक्ति है।

❀ जो जीव अपने ज्ञानकी पूर्ण जाननेकी शक्तिको माने तथा उसी का आदर और महिमा करे वह जीव अपूर्ण दशाको या राग को अपना स्वरूप नही मानता तथा उसका आदर और महिमा नही करता, इसलिये उसे ज्ञानके विकासका अहकार कहाँ से होगा ? जहा पूर्ण स्वभावका आदर है वहा अल्प ज्ञानका अहकार होता ही नही।

❀ ज्ञान स्वभावी आत्मा सयोग रहित तथा परमे रुकनेके भाव रहित है। किसी अन्य द्वारा उसका मान या अपमान नही है। आत्माका ज्ञान स्वभाव स्वय अपनेसे ही परिपूर्ण एव सुखसे भरपूर है।

❀ सर्वज्ञता अर्थात् अकेला ज्ञान परिपूर्ण ज्ञान। ऐसे ज्ञानसे भरपूर आत्माकी प्रतीति करना वह धर्मकी नीव है। धर्मका मूल है।

❀ मुझमे ही सर्वज्ञरूपसे परिणमित होनेकी शक्ति है, उसीसे मेरा ज्ञान परिणमित होता है—ऐसा न मानकर शास्त्रादि निमित्तो के कारण मेरा ज्ञान परिणमित होता है—ऐसा जिसने माना उसने सयोगसे लाभ माना है, इसलिये उसे सयोगमे सुखबुद्धि है, क्योकि जो जिससे लाभ माने उसे उसमे सुखबुद्धि होती है। चैतन्य बिम्ब स्वतत्त्वके सिवा अन्यसे लाभ मानना वह मिथ्याबुद्धि है।

❀ "मेरा आत्मा ही सर्वज्ञता और परमसुखसे भरपूर है"—ऐसी जिसे प्रतीति नही है वह जीव भोग हेतु धर्मकी अर्थात् पुण्यकी ही श्रद्धा करता है, चैतन्यके निर्विषय सुखका उसे अनुभव नही

❀ अरिहंत भगवान जैसी आत्माकी सर्वज्ञशक्ति अपनेमे भरी है। यदि अरिहंत भगवानकी ओर ही देखता रहे और अपने आत्मा की ओर ढलकर निजशक्तिको न सभाले तो मोहका क्षय नही होता। जैसे शुद्ध अरिहंत भगवान है शक्तिरूपसे वैसाही मैं हूँ–इसप्रकार यदि अपने आत्माकी ओर उन्मुख होकर जाने तो सम्यग्दर्शन प्रगट होकर मोहका क्षय होता है। इसलिये परमार्थ से अरिहंत भगवान इस आत्माके ध्येय नही है, किन्तु अरिहंत जैसे सामर्थ्यवाला अपना आत्माही अपना ध्येय है। अरिहंत भगवानकी शक्ति उनमे है, उनके पाससे कही इस आत्माकी शक्ति नही आती, उनके आश्रयसे तो राग होता है।

❀ प्रभो! तेरी चैतन्य सत्ताके असख्य प्रदेशी क्षेत्रमे अचिंत्य निधान भरे है, तेरी सर्वज्ञशक्ति तेरे ही निधानमे विद्यमान है, उसकी प्रतीति करके स्थिरता द्वारा उसे खोद (-खन) तो उसमे से तेरी सर्वज्ञता प्रगट हो।

❀ जिसप्रकार पूर्णताको प्राप्त ज्ञानमे निमित्तका अवलबन नही है, उसीप्रकार निचली दशामे भी ज्ञान निमित्तके कारण नही होता, इसलिये वास्तवमे पूर्णताकी प्रतीति करनेवाला साधक, अपने ज्ञानको परावलम्बनसे नही मानता, किन्तु स्वभावके अवलम्बनसे मानकर स्वोन्मुख करता है।

❀ सर्वज्ञशक्तिवान् अपने आत्माकी ओर देखे तो सर्वज्ञताकी प्राप्ति हो सकती है, परकी ओर देखनेसे आत्माका कुछ नही हो सकता। अनन्तकाल तक परकी ओर देखता रहे तो वहाँसे सर्वज्ञता प्राप्त नही होगी और निज स्वभावकी ओर देखकर स्थिर होनेसे क्षणमात्रमे सर्वज्ञता प्रगट हो सकती है।

परिशिष्ट [२]

द्रव्यानुयोगमें दोषकल्पनाका निराकरण

कोई जीव कहता है कि–द्रव्यानुयोगमे व्रत, सयमादिक व्यवहार धर्मकी हीनता प्रगट की है, सम्यग्दृष्टिके विषय–भोगादिको निर्जरा का कारण कहा है,—इत्यादि कथन सुनकर जीव स्वच्छन्दी बनकर पुण्य छोड देगा और पापमे प्रवर्तन करेगा, इसलिये उसे पढना–सुनना योग्य नही है। उससे कहते है कि —

जैसे, मिसरी खानेसे गधा मर जाये तो उससे कही मनुष्य तो मिसरी खाना नही छोड देंगे, उसीप्रकार कोई विपरीत–बुद्धि जीव अध्यात्म ग्रन्थ सुनकर स्वच्छन्दी होजाता हो उससे कही विवेकी जीव तो अध्यात्म ग्रन्थोका अभ्यास नही छोड देंगे ? हा, इतना करेंगे कि जिसे स्वच्छन्दी होता देखें उसको वैसा उपदेश देंगे जिसमे वह स्वच्छन्दी न हो। और अध्यात्म ग्रन्थोमे भी स्वच्छन्दी होने का जगह–जगह निषेध किया जाता है, इसलिये जो उन्हे बराबर सुनता है वह तो स्वच्छन्दी नही होता, तथापि कोई एकाध बात सुन-कर अपने अभिप्रायसे स्वच्छन्दी होजाये तो वहाँ ग्रन्थका दोष नही है किन्तु उस जीवका ही दोष है। पुनश्च, **यदि झूठी दोष–कल्पना द्वारा अध्यात्म शास्त्रोंके पठन–श्रवणका निषेध किया जाये तो**

करके सम्यग्दृष्टि हो और तत्पश्चात् चरणानुयोगके अनुसार व्रता-दिक धारण करके व्रती हो । –इसप्रकार मुख्यरूपसे तो निचली दशामें ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है; तथा गौणरूपसे जिसे मोक्ष-मार्गकी प्राप्ति होती दिखाई न दे उसे प्रथम तो व्रतादिकका उपदेश दिया जाता है। इसलिये उच्च दशावालेको अध्यात्मोपदेश अभ्यास करने योग्य है,—ऐसा जानकर निचली दशावालोको वहाँसे पराङ्मुख होना योग्य नही है।

शंका:—उच्च उपदेशका स्वरूप निचली दशावालोको भासित नही होता।

समाधान:—अन्य (अन्यत्र) तो अनेक प्रकार की चतुराई जानता हैं और यहाँ मूर्खता प्रगट करता है वह योग्य नही है। अभ्यास करनेसे स्वरूप बराबर भासित होता है, तथा अपनी बुद्धि अनुसार थोडा–बहुत भासित होता है, किन्तु सर्वथा निरुद्यमी होने का पोषण करे यह तो जिनमार्गका द्वेषी होने जैसा है।

शंका:—यह काल निकृष्ट (हलका) है, इसलिये उत्कृष्ट अध्यात्मके उपदेशकी मुख्यता करना योग्य नही है।

समाधान:—यह काल साक्षात् मोक्ष होनेकी अपेक्षासे निकृष्ट है, किन्तु आत्मानुभवादि द्वारा सम्यक्त्वादि होनेका इस कालमे इन्कार नही है, इसलिये आत्मानुभवादिके हेतु द्रव्यानुयोगका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। श्री कुन्दकुन्दाचार्य रचित "मोक्ष-पाहुड" मे कहा है कि —

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इ दत्त।
लोयतियदेवत्त तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ॥७७॥

शास्त्रका अर्थ करनेकी पद्धति

व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्यको तथा उसके भावोको एव कारण-कार्यादिको किसीके किसीमे मिलाकर निरूपण करता है, इसलिये ऐसे ही श्रद्धानसे मिथ्यात्व है, अत इसका त्याग करना चाहिये। और निश्चयनय उसीको यथावत् निरूपण करता है, तथा किसीको किसीमे नही मिलाता, इसलिये ऐसे ही श्रद्धानसे सम्यक्त्व होता है, अत उसका श्रद्धान करना चाहिये।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो, जिनमार्गमे दोनो नयोका ग्रहण करना कहा है, उसका क्या कारण ?

उत्तर—जिनमार्गमे कही तो निश्चयनयकी मुख्यता सहित व्याख्यान है, उसे तो "सत्यार्थ इसीप्रकार है" ऐसा समझना चाहिये, तथा कही व्यवहारनयकी मुख्यता लेकर कथन किया गया है, उसे "ऐसा नही है किन्तु निमित्तादिकी अपेक्षासे यह उपचार किया है" ऐसा जानना चाहिये, और इसप्रकार जाननेका नाम ही दोनो नयोका ग्रहण है। किन्तु दोनो नयोके व्याख्यान (कथन-विवेचन) को समान सत्यार्थ जानकर "इसप्रकार भी है और इसप्रकार भी है" इसप्रकार भ्रमरूप प्रवर्तनेसे तो दोनो नयोका ग्रहण करना कहा नही है।

प्रश्न—यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है तो जिनमार्गमे उसका उपदेश क्यो दिया है ? एक मात्र निश्चयनयका ही निरूपण करना चाहिये था।

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	लाइन	अशुद्धि	शुद्धि
६	५	त्यो	त्यो
३६	१८	विषय	विपयी
४०	१५	माम	नाम
४४	२	आत्माके	दूसरे आत्माके
४८	१६	सतभगी	सप्तभगी
५०	१२	जीवपर	जीव पर
५२	१७	वस्तुकी	वस्तुको
५४	१५	जीवपर	जीव पर
६१	११	मियति	नियति
६५	१०	किन्ह	किन्ही
८१	११	होत	होता
८४	११	क्षमोपशम	क्षयोपशम
८६	१	वृति	वृत्ति
८६	२१	ह	है
६०	२०	पृ०	पृ० १०५
६७	२२	द्वितयो	द्वितीयो